धारा...57 ग्रंथांक...265

आत्मकथा-आत्मव्यथा गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

आचार्य कनकनन्दी

पुण्य स्मरण

एक दिवसीय पञ्च कल्याणक व क्षुल्लिका शान्तिश्री, क्षुल्लिका श्रेयांसश्री की दीक्षा के उपलक्ष्य में (सीपुर-2016)

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान, बड़ौत (उ.प्र.)
2. धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, उदयपुर (राज.)

ग्रन्थांक-265 प्रतियाँ-500
संस्करण-2016 (प्रथम) मूल्य-75/- रु.

सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त
(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418
(2) डॉ. नारायणलाल कछारा
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

विमलनाथ स्तुति

-क्षु. सुवीक्षमती माताजी

(चाल : जय नवग्रह शांति विधान.....)

जय विमलनाथ भगवान् की...जय विमलनाथ भगवान् की-2
द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित होऽऽऽ-2, तीन लोक के नाथ की।

अष्ट कर्म को नष्ट करके...अष्ट गुणों को प्राप्त किया-2
काया के पिंजरे को तजकर...सिद्ध-शिला पर वास किया-2
वीतराग सर्वज्ञ हितंकर होऽऽऽ-2, भव्यों के सिरताज की।। (1) जय...

सम्मेदशिखर की पुण्य-भूमि से...पाया है तुमने निर्वाण-2
अनंत-गुणों को प्राप्त करके...पाया है निज में विश्राम-2
पतन पथगामी जीवों को होऽऽऽ-2, दिया मार्ग उत्थान का।। (2) जय...

निर्मल मन-वच-तन से जो भी...विमल प्रभु का ध्यान करे-2
आर्त्त-रौद्र परिणाम त्यागकर...धर्म से शुक्ल की ओर बढ़े-2
पूर्ण रत्नत्रय को पाकर होऽऽऽ-2, अविनाशी पद प्राप्त करे।। (3) जय...

कैसे लड़े तुम कर्म-शत्रु से...मुझको भी बतलाओ ना-2
मोह-अरि के मर्दन हेतु...अस्त्र अमोघ सुझाओ ना-2
अकुलाई हूँ भव-वन में मैं होऽऽऽ-2, मुक्ति का वरदान दो।। (4) जय...

चमत्कारी गुरु श्री कनकनन्दी

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : बड़े अच्छे लगते हैं.....)

कनकनन्दी सूरीवर...हैं ज्ञानी..हैं ध्यानी..विज्ञानी..गुरुवर...(ध्रुव)...

सत्य-समता की साधना...चल रही निरन्तर...
ज्ञान-विज्ञान सत्य-शोध...करते हैं..सतत...
बड़े व्यस्त-मस्त...ये ऋषिवर..ये मुनिवर..सूरीवर..गुरुवर...कनकनन्दी...(1)...

इनके ज्ञान-विज्ञान-अनुभव...का नहीं कोई सानी...
जो भी आता है निश्रा में...बन जाता विज्ञानी...

बड़े मंगलकारी...ये ऋषिवर..ये मुनिवर..सूरीवर..गुरुवर...कनकनन्दी...(2)...
इनके स्वाध्याय कार्यशाला में...जो बन आये विद्यार्थी...
अपूर्व अनुभव पाता है...हो जाता है ज्ञानी...
बड़ा आनंददायी...अध्यापन..ये शिक्षण..अनुमोदन..गुरुवर...कनकनन्दी...(3)...
इनके शुभ आशीष से...मिट जावे रोग तनाव/(संताप)...
'सुविज्ञ' जन सुख पावे...तन-मन-अक्ष स्वस्थ...
बड़े चमत्कारी...ये गुरुवर..ये मुनिवर..ये ऋषिवर..सूरीवर...कनकनन्दी...(4)...

सीपुर, दिनांक 03.10.2016, रात्रि 9.32

बड़ा आनंददायी कनक गुरुकुल

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : बड़े अच्छे लगते हैं.....)

बड़ा आनंददायी...ये अध्ययन..ये चिन्तन..ये मनन..गुरुकुल...(ध्रुव)...

कुलाधिपति कनकनन्दी...हैं वैश्विक श्रमण...
इनकी स्वाध्याय कार्यशाला...व्यापक ज्ञानदायक...
बड़ा आनंददायी...ये शिक्षण..मोटिवेशन..अनुमोदन...गुरुकुल...(1)...

विश्वविद्यालय से बढ़कर है...यह ब्रह्माण्डीय गुरुकुल...
देश-विदेश के विज्ञानी/(सुविज्ञ, जिज्ञासु) जन...करते शोध-बोध...
बड़ा शांतिदायी...ये अध्ययन..अन्वेषण..ये चिन्तन...गुरुकुल...(2)...

धर्म-दर्शन-विज्ञान का...होता सत्य गवेषण...
उदार भाव वैश्विक दृष्टि...सरल-सहज योग...
बड़ा सुखकर है...ये अनुभव..ये आनंद..ये साधन...गुरुकुल...(3)...

छोड़ों अपने पूर्वाग्रह...बनो उदार भावी...
सत्य साम्य सुख अमृत...पान करो हे! भाई...
बड़े समताधारी...हैं निस्पृह..निराडम्बर..आचार्य...गुरुवर...(4)...

सीपुर, दिनांक 03.10.2016, रात्रि 9.13

भेद-विज्ञान के प्रवक्ता आचार्य कनकनन्दी जी

-क्षु. सुवीक्षमती

(चाल : आधा है चन्द्रमा.....)

चेतन का पुद्गल से कैसा नाता-2, मोही जीव न समझ पाताऽऽऽ...(स्थायी)...

अनादिकाल से साथ रहते, पर दोनों ही है अति भिन्न
एक मूर्तिक दूजा अमूर्तिक, एक चेतन दूजा अचेतन
एक शाश्वत..दूजा नश्वर...अस्तित्व अपेक्षा है अभिन्न।। (1)...चेतन...

चेतना के कारण ही जीव श्रेष्ठ, अनंत सुख का अधिकारी
जब छोड़ चले तन को चेतन, कोई करता नहीं तन से यारी
अति अचरज है..मोही जीव पर...संयोग संबंध को स्व माने।। (2)...चेतन...

कनकनन्दी गुरुवर जगाये, मिथ्या मोह की नींद भगाये
सत्य का परिज्ञान कराये, भेद-विज्ञान को समझाये
जड़ से चेतन को..कैसे भिन्न करे...सम्यक् उपाय सुझाये।। (3)...चेतन...

'सुवीक्ष' तू है अति धन्य, आत्मज्ञानी गुरुवर को पाकर
सत्य-साम्य-सुखामृतकामी, निस्पृही अयाचक गुरुवर
उदार-व्यापक..दिव्य भाव धारक...गुरु चरणों में नमता है विश्व सारा।। (4)...चेतन...

दोष दूर एवं गुण संवर्द्धन हेतु कनक गुरु से प्रार्थना

-क्षु. सुवीक्षमती

(चाल : कुछ पल की जिन्दगानी.....)

आई शरण में गुरुवर, स्वीकार मुझको कर लो।
दोषों को दूर कर लूँ, आशीष ऐसा दे दो।। (ध्रुवपद)

भोगों में मैं न उलझूँ, विषयों में ना लुभाऊँ
हिताहित को मैं जानूँ, अविवेक को नशाऊँ
अज्ञान मोह नाशूँ, वरदान ऐसा दे दो।। (1)...दोषों को...

शुभ भाव सदा भाऊँ, दुर्ध्यान को भगाऊँ
विभाव भाव त्यागूँ, कर्म कालिमा छुड़ाऊँ

सन्मार्ग पर चलूँ मैं, 'सुवीक्ष' दृष्टि दे दो।। (2)...दोषों को...

आत्मा का ध्यान धारूँ...पर से न कुछ भी चाहूँ
समता सतत ही पालूँ...त्रियोग को संभालूँ
अक्षय अनंत पद...गुरुवर मुझे दिला दो।। (3)...दोषों को...

कमल से शिक्षा पाऊँ...अनुभव में भी लाऊँ
स्वयं को केन्द्र रक्खूँ...कर्त्तव्य भी निभाऊँ
विश्व-बंधुत्व भाव...निस्पृह वृत्ति दे दो।। (4)...दोषों को...

अनासक्त योगी आचार्य कनकनन्दी गुरुवर

-क्षु. सुवीक्षमती

(चाल : कलयुग बैठा...../भातुकली.....)

मोह माया में सुख न समझकर, मोह का नाता छोड़ दिया
मुक्ति पथ के राही ने, संयम से नाता जोड़ लिया...(स्थायी)...

संसार-भोग-शरीर नश्वर, निराकुल सुख के बाधक है
मन और इन्द्रियों से परे जो, निज आतम के चाकर है
आत्म वैभव की सत्ता से युक्त, अनंत गुणों के अनुरागी।। (1)...मुक्ति...

अनमोल मानव जीवन पाकर, इसकी महत्ता को समझा
अल्प वय से एकांत मौन को, निज का साथी बना लिया
चराचर से शिक्षा गहते, लघु गुरु का न भेद करे।। (2)...मुक्ति...

'कनक' तपोधन समता साधक, कमल सम निर्लिप्त रहे
संसार मध्य रहते हुए भी, निस्पृहता की मूरत है
अनुभवी ज्ञानी गुरु की भक्ति, 'सुवीक्ष' नित ही करती है।। (3)...मुक्ति...

स्व-संबोधन

-क्षु. सुवीक्षमती

(चाल : कलयुग बैठा....., चाँदी की दीवार.....)

कब तक पर में अटके चेतन, निज वैभव को भूलकर
अब तो जागृत हो जा चेतन, मोह मदिरा त्यागकर...(स्थायी)...

चतुर्गति में भ्रमण करके, अनंत दुःख सहे हैं
विषय-भोग की अभिलाषा में, मिथ्या कर्म किये हैं
काम-क्रोध-मद-लोभ अरि से, दृढ़तम नाता जोड़ा है।।...(1)...

आर्त्त-रौद्र ध्यान में ही, सतत समय गँवाया है
राग-द्वेष में बंधकर तूने, स्वयं को विसराया है
सुखाभास ही तुझको भाया, सत्य को नहीं जाना है।।...(2)...

'कनकनन्दी जी' गुरुवर तुझको, पुनः-पुनः समझाते हैं
अमृतमयी वाणी के द्वारा, निज का बोध कराते हैं
गुरुवाणी के अवलंबन से, 'सुवीक्ष' सत्पथ जान ले।।...(3)...

सत्संगति हेतु स्व-संबोधन

-क्षु. सुवीक्षमती

(चाल : जो तेरी रुह को.....)

जो तुम्हें त्याग की राह पर ले चले, ऐसी ही संगति तुम करो, सत्य के पथ पर ही चलो। (स्थायी)

जग में विषमय विषय, इनसे दूर रहो, यम-नियम पालकर, मन को वश में करो।
सच्चे-देव-आगम व गुरु की शरण...छाँव में तुम सदा ही रहो।। (1)...सत्य...

क्रोध-मान-माया-लोभ ईर्ष्या घृणा, इन विभावों को त्यज, शुभ भाव गहो।
हेय-उपादेय में विवेक धरो, स्व-स्वभाव को शीघ्र वरो।। (2)...सत्य...

पाप भीरु बनो, धैर्य धारण करो, निर्भय बनकर, मोक्ष मार्ग पर चलो।
'कनक' गुरु की, सुनिश्रा में रहो, 'सुवीक्ष' महान् बनो।। (3)...सत्य...

अचिन्त्य प्रज्ञा धारक 'कनक' गुरुवर की वंदना

-क्षु. सुवीक्षमती

(चाल : दिल दिवाना.....)

अचिन्य प्रज्ञा धारक गुरु केऽऽऽ
पावन चरणों में..त्रय योग से..वंदन हैऽऽऽ...(स्थायी)...

भटके हुए को मार्ग दिखाये, करके ज्ञान उजेरा होऽऽ होऽऽ

जो कोई इनकी शरण में आये, छोड़ न जाना चाहे
स्वाध्याय पद्धति अति अनुपम मनहारीऽऽऽ...(1)...पावन...

अनुवाद ही नहीं करते है, अनुभव से समझाते होऽऽ होऽऽ
हर विषय को स्व में जोड़ने की, दुर्लभ कला सिखाते
इनसा न कोई निःस्वार्थी इस जग मेंऽऽऽ...(2)...पावन...

प्रायोगिक दृष्टांत के द्वारा, प्रतिपादन है करते होऽऽ होऽऽ
मंदमति भी सुगमता से, अवबोध है करते
देशी-विदेशी सुविज्ञ जन तुमसे पढ़ेऽऽऽ...(3)...पावन...

हे! अविकारी समताधारी, सरल स्वभावी गुरुवर होऽऽ होऽऽ
माता से भी कोमल हृदयी, करुणासागर मुनिवर
'सुवीक्षमती' कैसे पाये गुण तेरेऽऽऽ...(4)...पावन...

'कनक' गुरुवर की दिव्यवाणी

-क्षु. सुवीक्षमती

(चाल : शत-शत वंदन.....)

हे आत्मन्! श्रवण कर, 'कनक' तपोधन की वाणी
ना जा तू पर विषयों में, गुरुवर की है वाणी

चतुर्गति में फिरकर भी, क्यों नहीं अब तो जगता है?
भौतिकता में फँसकर के, कष्टों को क्यों सहता है?
ले ले धर्म गुरु की शरण, स्वयं की शरणा ले ले
सद्राही बन जा तू, अहित-हित पहचान ले।। (1) हे आत्मन्...

राग-द्वेष-मोह-तृष्णा, मोक्षमग के ठग है
सजग रहना लूट न ले, तेरी श्रद्धा प्रज्ञा रे
हर पल तुम ध्यान करो, निज स्वरूप पहचान करो
जब तक न मिले निज गुण, गुणीजनों का विनय करो।। (2) हे आत्मन्...

सृजन में ही रत रहना, विघटन कभी न तुम करना
शिवपथ के पथिक बनकर, परमानंद को वरना

राग-द्वेष रूपी वैतरणी को, समता के बल से तरना
विफलता से शिक्षा लेकर, 'सुवीक्ष' अग्रगामी बनो।। (3) हे आत्मन्...

अणु का संक्षिप्त स्वरूप

-क्षु. सुवीक्षमती

(चाल : गुरुदेव दया करके.....)

'कनक' गुरु के मुख से, अपूर्व ज्ञान पाकर
अति आनंदित है मन, अणु स्वरूप सुनकर...(स्थायी)...

जीव द्रव्य के अनंतर, सर्वश्रेष्ठ है पुद्गल, अणु पुद्गल परमाणु, त्रिनाम का है धारक।
महिमा है इसकी भारी, संसार का है स्वामी।। (1)...'कनक'...

आदि-मध्य व अंत, जिसका एक ही है, मूर्तिक होने पर भी, इन्द्रिय अगोचर है।
शब्दों का कारण है, पर शब्द न स्वरूप है।। (2)...'कनक'...

स्पर्श-रस-गंध-वर्ण, आदि अनंत गुण धरे, अविभागी गुण के कारण, कोई भी न भेद सके।
शुद्ध परमाणु का, प्रयोग न संभव है।। (3)...'कनक'...

प्रथम गुणस्थान से, चौदहवें गुणस्थान तक, सब खेल है पुद्गल का, जन्म से मृत्यु तक।
अति सूक्ष्म स्वरूप होने से, सर्वज्ञ के ही गम्य।। (4)...'कनक'...

आयड़, दिनांक 17.04.2014

'कनक' गुरु की असीम कृपा

-क्षु. सुवीक्षमती

क्या हूँ 'मैं' मुझे स्वयं भी था नहीं पता, आपने बता दिया है स्वयं का पता।
तन से भिन्न जो मेरा आतम है, वही तो मेरा परम शरण है।।

न 'मैं' किसी से लघु व दीर्घ हूँ, मुझसे न कोई उच्च व हीन है।
'मैं' तो 'मैं' हूँ स्वयं में पूर्ण है, अक्षय अनंत गुणों का पिण्ड हूँ।।

निहारती थी जिसको मैं पाषाण में, वही तो मेरा भी निज स्वरूप है।
आपने अनुपम ज्ञान जो दिया, जगत् में कहीं और न मिला।।

आत्म द्रव्य सर्वश्रेष्ठ है द्रव्यों में, अन्य द्रव्य तो मात्र ज्ञेय रूप है।
शुद्ध-बुद्ध सुख स्वरूप जीव ही तो है, अन्य द्रव्य तो मात्र शुद्ध रूप है।।
आपने दिया जो मुझको दिव्य ज्ञान है, इस ज्ञान से बड़ा न कोई दान है।
मुझसे हो न जब तक मेरा मिलन, मिलते रहे आप जैसे गुरुवर।।

निःस्वार्थ साधु सेवारत भक्तद्वय

-क्षु. सुवीक्षमती

(चाल : फूलों का तारों का.....)
साधु सेवा में जो, तत्पर रहते है
'कनक' गुरु को, जो अतिप्रिय है
मुकेश संजय शुभ, नाम धारे है...(स्थायी)...

आहार-औषध-ज्ञान व वैयावृत्ति, चारों ही दानों में है इनकी प्रवृत्ति।
तन-मन-धन-श्रम समय लगाते, निःस्वार्थ भाव से है सेवा करते।
साधु संगति ही नित्य चाहते।। (1)...साधु...

बाह्य आडम्बर के प्रभाव से परे, सादा जीवन उच्च विचार धरे।
शक्ति अनुसार संयम भी पाले, संपूर्ण त्याग के भी भाव है धरे।
जग में रहकर भी है जग से न्यारे।। (2)...साधु...

भक्त द्वय से बहु शिक्षा मिलती, कर्त्तव्य पालना प्रेरणा मिलती।
साधर्मी जन इनका अनुमोदन करे, गुण अनुकरण के भाव है धरे।
धर्म पत्नियाँ भी अनुगामिनी है।। (3)...साधु...

आचार्य कनकनन्दी की स्व-पर विश्व कल्याण की भावना

-क्षु. सुवीक्षती

(चाल : कलयुग बैठा.....)
सर्वत्र लोक में अमन के हेतु, गुरुवर शुभ भाव है करे।
सत्य परमेश का वरण मात्र ही, अंतिम लक्ष्य हृदय में धरे।। (स्थायी)

सच्चारित्र की स्वर्णिम आभा, कर्म कालिमा दूर करे।

अज्ञात रहस्यों से आलोकित, हृदय सदा पवित्र रखे।
विसंवादों के संहारक, मुखर वक्तृत्व के धारक है।। (1)...सत्य...

'कनकनन्दी' शुभ नाम से भूषित, सहज सरलता की मूरत है।
विद्या-विशारद क्षीण संसारी, जिनशासन आभूषण है।
प्रमुदित मन से ज्ञान पिपासु, गुरुवर की शुभ शरण है।। (2)...सत्य...

आत्म-अनुसंधान में रत, गुरुवर मेरे हृदय रहे।
पूज्य गुरुवर का व्यक्तित्व, युग-युग तक स्मरणीय रहे।
आत्म-उद्धारक 'सुवीक्ष' बने, गुरुवर ऐसा आशीष दो।। (3)...सत्य...

आचार्य कनकनन्दी के वंदन-अभिनंदन

-क्षु. सुवीक्षमती

(चाल : म्हारा हिवड़ा में.....)

मनवा डोले मोरा आज, बोले जय-जय गुरुवर।
श्री कनकनन्दी ऋषिराज, वंदन-अभिनंदन।
सब जन आओ गुरु गुण गाओ..भक्ति से शीष झुकाओ।। (स्थायी)

चरण जहाँ इनके पड़ते वहाँ खुशहाली छा जाती हैऽऽऽ
आपस के वैर मिटे सारे शुभ स्नेह सरिता बहती है
रोग-शोक निर्धनता नशती भी घटती...मनवा...
सब जन आओ गुरु गुण गाओ..पावन चरण पखारो।। (1)...मनवा...

निश दिन चिन्तन में रत गुरुवर सबकी चिंतायें हरते हैंऽऽऽ
व्यापक दृष्टि से आलोकित अनेकांत को समझाते है
स्याद्वाद वाणी के द्वारा वाद-विवाद नशाते...मनवा...
सब जन आओ गुरु गुण गाओ..गुरु की पूजा रचाओ।। (2)...मनवा...

मुखण्डल पर मुस्कान तथा अधरों से गिरता ज्ञान महाऽऽऽ
त्रियोग के सम्यक् पालक है रत्नत्रय के आराधक है
मुखर वक्ता प्रखर प्रज्ञा निस्पृह योगी अनुत्तर...मनवा...
सब जन आओ गुरु गुण गाओ..दिव्य देशना पाओ।। (3)...मनवा...

धन से धर्म नहीं होता नहीं होता भीड़ से धर्म प्रचारऽऽऽ
धर्म तो आतम का स्वरूप होता प्रकट ये स्वय में ही
ऐसे अनुपम ज्ञान को पाकर भव्य कमल खिल जाते...मनवा...
सब जन आओ गुरु गुण गाओ..जीवन सफल बनाओ।। (4)...मनवा...

पाड़वा, दिनांक 08.07.2015

स्व-संबोधन

-क्षु. सुवीक्षमती

(चाल : दिल दे दिया है.....)

सुन मेरे आत्मन् हे परमात्मन्..शुद्ध-बुद्ध-आनंद-घन।
होऽऽऽ हे आत्मन्-परमात्मन्।। (स्थायी)

विषयों की चाह में तुझे सताया, भले-बुरे का भेद भुलाया।
प्रायश्चित्त से तेरे पाप अब धुल जायेंगे, कर्मों के सारे बंधन अब खुल जायेंगे।
गुरुवर कृपा से..संयम के साथ से..मिट जाये आवागमन।। (1)...होऽऽऽ...

अति पुण्य उदय तब आया, जिनधर्म की पाई शुभ छाया।
'कनकनन्दी' गुरुवर स्व का बोध कराये, स्वयं को कैसे पाये ये उपाय बताये।
स्नेह के सागर..निःस्वार्थ बंधु..छूटे नहीं पावन चरण।। (2)...होऽऽऽ...

संसार-भोग और शरीर, इनमें नहीं कुछ भी स्थिर।
जन्म-जरा व मरण, नहीं है तव रूप, अनंत ज्ञान-दर्शन-सुखमय तव स्वरूप।
आत्मा का ज्ञान हो..आत्मविश्वास हो..आत्मा में होवे रमण।। (3)...होऽऽऽ...

आध्यात्मिक गुरु कनकनन्दी जी वर्षा जैन की पुकार

रचना-सौ. वर्षा जैन
काव्यान्तर-श्रमणी सुवत्सलमती

(चाल : दुनिया बोले बोलती रहे.....)

दुनिया बोले बोलती रहे, संसार को असार देख वैराग्य जगे।। (ध्रुव)

मन मेरा बहुत विचलित है, गुरु को पुकारे कहाँ हो तुम?
मुझे आपकी आवश्यकता है, तरण-तारण तो आप ही हो।

मुझमें भी शक्ति है सिद्ध बनने की, किन्तु श्रमण मेकर आप ही है..2..दुनिया..

अंतर मन से एक आवाज आयी, वर्षा मैं तेरे मन में ही बसा।
जब तुम शांत सहज होती, क्षमावान् व नैतिक होती।
जब तुम स्व-स्वभाव में रहती, दान सेवा परोपकार करती हो..2..दुनिया..

मन के सूक्ष्म भावों न जानती, स्व अनंत गुणों को न पहचानती।
जब-जब तुम स्वभाव में रहती हो, मैं तब तुम्हारे साथ होता हूँ।
जब तेरे भाव विकृत होते, उस क्षण मैं तुमसे दूर होता हूँ..2..दुनिया..

प्यारे वत्स! निर्णय अब तुम्हारे हाथ में, कितने समय मेरे साथ रहना चाहा।
अपने स्वभाव को अब समझ रही हो, शुभभावों के लिए शुभाशीष।
गुरु सृजित कविताएँ जब गाओगी, तब मुझे अपने साथ पाओगी..2..दुनिया..

अनेक जन्मों से मेरी भावना रही, आपका ही शिष्य बन साधना।
आज मुझे सही पथ मिला है, अपने परम लक्ष्य को पाना है।
श्रीसंघ का मुझ पर वात्सल्य है, दोनों हाथों से आशीष पाया है
/(शुद्धात्म वर्षा ने नमन किया है)..2..दुनिया..

मध्याह्न 12.45

निस्पृह संत गुरुवर की प्रभावना

-बा.ब्र. पल्लवी

(चाल : नम्न मनेयलि दिनवु-दिनवु.....कन्नड़ राग.....)
वैज्ञानिक आचार्य गुरु के शरणों में सब आ जाओ।
मैं (स्व, आत्मा) को पाके, जीवन सफल (धन्य) बना लो।
स्वाध्याय तपस्वी गुरुवर के शरण में आ जाओ, शरण में आ जाओ।। (ध्रुव)

गुरुवर महा मेधावी है, प्राणी मात्र में समता है।
जो भी आते शरणों में तर जाते संसार से।
सत्य, शांति, निस्पृह गुरु की सब मिलके जय बोलो।2
गुरुवर के शरण पाके, भव सिंधु से तर जाओ।। वैज्ञानिक...(1)

सरल जीवन गुरु का है, उच्च विचार महान् है।

जंगल में रहकर भी, देश-विदेशों में प्रचार (प्रसार) है।
ख्याति-पूजा-लाभ त्यागी की जीवन ही धन्य है।2
ऐसे गुरु की सुआश्रय लेके, शिष्य भी परिवर्तित है।। वैज्ञानिक...(2)

परोपकारी गुरुवर की, जीवन ही श्रेष्ठ है।
अनेक साधु-साध्वी-व्रती की ज्ञान-दान ही ज्येष्ठ है।
बहु शिविर, प्रवचनों से बहु भक्तों भी प्रभावित है।2
आचार्य रत्न की शरण पाके, पल्लवी भी प्रभावित है।। वैज्ञानिक...(3)

सीपुर, दिनांक 12.10.2016, प्रातःकाल 7.00

निस्पृह संत गुरुवर की विशेषताएँ

बा.ब्र. पल्लवी

(चाल : जिन नीत्र नाम.....)
वैज्ञानिक आचार्य गुरु का विज्ञान बड़ा प्यारा है।
सर्व जीव प्रति समता, प्रेम बहुत न्यारा है।। (ध्रुव)
तंदाने..तंदाने..तंदिनी..तंदिनी..तंदाने2 (कन्नड़ लय)

स्वाध्याय तपस्वी गुरु का, ज्ञान सबसे निराला।
मैं (स्व, आत्मा) को प्राप्त करने का, पुरुषार्थ जगाने वाला।।
कोमल हृदयी गुरुवर, सबको वात्सल्य देते है।
दीन-दुःखी जीवों को देखे, अश्रु धारा बहाते।। तंदाने...(1)

प्रकृति प्रेमी गुरुवर का, भाषा भंडार हैं अद्भुत।
हर जीव के प्रति है, मैत्री भाव उच्चतम।।
पंथवाद से परे है, सत्य धर्म बतलाते।
राग, द्वेष निंदा तजकर, सौम्य भाव धरते है।। तंदाने...(2) ।।

ख्याति, पूजा लाभ बाह्य आडंबर त्यागे है।
स्वयं को पाने हेतु जंगल में निवास करे है।।
करते गुरुवर सदा, गुणी जनों की प्रशंसा।
निंदा, दुर्जन, पापी से, दूर रहते सर्वदा ।। तंदाने...(3) ।।

भारत को विश्व गुरु बनाना, विश्व स्तर पर पहुँचाना।
स्वयं को प्राप्त करना त्रय (महा) लक्ष्य है गुरु का।।
विश्व गुरुवर का है लक्ष्य सर्व हितकारी।
लक्ष्य पूर्ण करने हेतु, मौन (साधना) आत्माराधना।। तंदाने...(4)

उच्च विचारधारी गुरु का, संयम जीवन श्रेष्ठ।
सर्वोच्च उपलब्धि पाने का, पुरुषार्थ सबसे ज्येष्ठ।।
मैं (स्व, आत्मा) का ज्ञान करने वाले, विश्व गुरु ही धन्य है।
ऐसे गुरु की सान्निध्य पाके, 'पल्लवी' भी धन्य है।। तंदाने...(5)

सीपुर, दिनांक 11.10.2016, मध्याह्न 12.30 (विजयदशमी)

आचार्य कनकनन्दी गुरुवरांशी निवेदन (प्रार्थना)

रचयित्री-ब्र. संगीता
सहायक-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : आदिनाथ जी.....)

कनकनन्दी जी नाव चांगले दृष्टि देखीता/(प्रथम दर्शनी) मन रमले।
रामगढ़ मध्ये तव वाणी ऐकूणी, आनंदाने आले मन भरूनी।।

सहज-सरल सुहृदयी आचार्य गुरु आहे ते कसे?।
माझ्या मनात आज ही असे, प्रतिबिंबला तो क्षण असे।।

अनेकदा भी संघात आले, सोडून जाण्यास मन न माने।
एकच भावना, माझ्या मनात, भाग्य लाभले तर राहील संघात।।

दीक्षा घेण्याचे भाग्य लाभले (तर) कनकनन्दी जी च गुरुँ माझे।
पुत्र-पुत्री व ब्रह्मचारीच्या अनुमोदने ने सौख्य लाभले।।

अल्प बुद्धि मी याचना करी, तव-चरणी राहील बरी।
शुभ भावना माझी ही अशी, दीक्षा, शिक्षा-समाधि तुम्हीच द्यावी।।

दीर्घायु होवो माझे गुरुजी, ईश चरणी प्रार्थना करी।
त्वरेने मला दीक्षा देऊनी, मम जन्म हा सफल तू करी।।

कनकनन्दी जी माझे गुरुवर, स्वाभिमान हा वाटतो मनी।
चरण शरण भी तुझ माँगते, आर्यापद हे माँगते झणी।।

काय भाग्य है संगीताचे, 'कनक' गुरुंची शिष्या मी असे।
माया आईची वडिलांची दया, वर्णन करावया शब्द अपूरे।।

सीपुर, दिनांक 12.10.2016, प्रातःकाल 6.00

आचार्य कनकनन्दी गुरुंची विशेषता

-ब्र. संगीता

(चाल : आदि प्रभू पाहुन....., देख तेरे संसार.....)

कनकनन्दी गुरुवरांना पाहून, मन हे पुलकित की होते
मनाची कळी-कळी खुलते

गुरुवर आमुचे गुणांची खाण, त्यांचा त्यांना जरा न मान।
अशा या कोमळ हृदयी, गुरुना पाहुण मन हे पुलकित (की) होते।
मनाची कळी.....(1)

ज्ञानी-विज्ञानी आमुचे गुरुवर, त्यांचा प्रचार देश-विदेश।
अशा या विज्ञानीक आचार्याना पाहुण मन हे पुलकित (की) होते।
मनाची कळी.....(2)

गुरुवर आमुचे प्रकृती प्रेमी, अनेक भाषांचे आहे भंडारी।
प्रत्येक जीवाप्रति त्यांना मैत्री भाव आहे, अशा या दयावंत गुरुना पाहुण मनहे
पुलकित (की) होते। मनाची कळी.....(3)

ख्याति (पूजा) लाभापासून सदाच दूरऽऽ बाह्य आडंबरांचा त्याग।
अशा या सद्हृदयी गुरुवरांना पाहुण मन हे पुलकीत (की) होते।
मनाची कळी.....(4)

स्वाध्यायी तपस्वीचे ज्ञान (च) निराळेऽऽ
स्वात्माची प्राप्ती करून देणारे अशा या अनुभवी गुरुवरांना पाहुण मन
हे पुलकीत की होते। मनाची कळी.....(5)

गुणीजनांची सतत प्रशंसा, दुर्जन पापीं ची निन्दा न करतात।
अशा या गुणी गुरुना पाहुण मन है पुलकित की होते।

मनाची कळी.....(6)

सीपुर, दिनांक 12.10.2016, प्रातःकाल 6.30

आचार्य गुरुवर कनकनन्दी की आरती

-बा.ब्र. पल्लवी

(चाल : कन्नड़ राग-नन्न हत्तीर इरू ओ प्रभुवे.....)

आरती करूँ वैश्विक गुरुँ की, 'कनकनन्दी' आचार्य रत्न की2
सत्यधर्म शांति भाव मुद्राधारी की, वात्सल्य स्नेह दया अनुकंप्पा
करूणाधारी की, जय हो! गुरु2 जय-जय हो! गुरुदेव!!

कुंथु गुरुदेव के श्रेष्ठ रत्न हो!
विमल सूरी गुरुवर के समंत भद्र हो

आरती करूँ...(1)

वसुधैव कुटुंब के, धारणाधारी हो!
विश्वमैत्री का, भाव धारे हो!

आरती करूँ...(2)

इस कलिकाल के, अकलंक देव हो।
बहुविध भाषा के, ज्ञाता तुम हो।।

आरती करूँ...(3)

मैं/(स्व, आत्मा) का ज्ञान कराने वाले विश्वगुरु हो!
पल्लवी को भी मैं/(स्व/आत्मा) का ज्ञान दिला दो।।

आरती करूँ...(4)

सीपुर, दिनांक 11.10.2016, मध्याह्न 1.30

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र	विषय	पृ.सं.
1.	विमलनाथ स्तुति	2
2.	चमत्कारी गुरु श्री कनकनन्दी	2
3.	बड़ा आनंदमयी कनक गुरुकुल	3
4.	भेद विज्ञान के प्रवक्ता-आचार्य कनकनन्दी	4
5.	दोष दूर एवं गुण संवर्द्धन हेतु कनक गुरु से प्रार्थना	4
6.	अनासक्त योगी-आचार्य कनकनन्दी	5
7.	स्व-संबोधन	5
8.	सत्संगति हेतु स्व-संबोधन	6
9.	अचिन्त्य प्रज्ञा धारक 'कनक' गुरुवर की वंदना	6
10.	'कनक' गुरुवर की दिव्यवाणी	7
11.	अणु का संक्षिप्त स्वरूप	8
12.	'कनक' गुरु की असीम कृपा	8
13.	निःस्वार्थ साधु सेवारत भक्त द्वय	9
14.	आचार्य कनकनन्दी की स्व-पर-विश्व कल्याण की भावना	9
15.	आचार्य कनकनन्दी के वंदन-अभिनंदन	10
16.	स्व-संबोधन	11
17.	आध्यात्मिक गुरु कनकनन्दी जी को वर्षा जैन की पुकार	11
18.	निस्पृह संत गुरुवर की प्रभावना	12
19.	निस्पृह संत गुरुवर की विशेषताएँ	13
20.	आचार्य कनकनन्दी गुरुवरांशी निवेदन (प्रार्थना)	14
21.	आचार्य कनकनन्दी गुरुंची विशेषता	15
22.	आचार्य गुरुवर कनकनन्दी की आरती	16
	आत्मकथा-आत्मव्यथा	
1.	अरिहंत स्तुति (अर्घ्य)	19
2.	मैं ज्ञान का सूरज हूँ	19
3.	रीति-रिवाज से भी परे है जैन धर्म	20
4.	परम उत्कृष्ट ही मेरा लक्ष्य	21

5.	स्व-पर हेतु भी आत्म पतन न करूँ	22
6.	कामना से परे भावना, चाहिए से परे-आवश्यकता व अनिवार्यता	23
7.	भूत से शिक्षा-वर्तमान के प्रयत्न से भावी सफलता पाऊँ	24
8.	स्व-मैनेजमेंट के मेरे अनुभूत सूत्र	25
9.	परम सत्य व आत्म तत्त्व का परिज्ञान हो तो कैसे!?	27
10.	स्व-दोष परिज्ञान हेतु ज्ञान बढ़ाना विधेय	28
11.	स्वगुणों के स्मरणादि से बढ़ते स्वगुण व घटते दुर्गुण	33
12.	नवीनता-रचनात्मकता-उपयोगिता हेतु	37
13.	शांत व अशांत मन से लाभ व अलाभ	39
14.	मैं आध्यात्मिक गुण-गुणी की प्रशंसा करूँ	45
15.	इंसान में बड़प्पन आये तो कैसे?	51
16.	भाव (भावना) तेरी अनंत शक्ति	52
17.	विश्व रंगमंच के प्रेक्षक व अभिनयकर्त्ता	66
18.	शोक/(रोना) की आत्मकथा व आत्मव्यथा	67
19.	भोग-भूमिज व कर्मभूमिजों से प्राप्त शिक्षाएँ	74
20.	बीज की आत्मकथा	75
21.	मूल मेरा नाम है (आत्मकथा)	76
22.	फल मेरा नाम है	79
23.	कबूतर मेरा नाम है (मैं हूँ शांतिदूत)	80
24.	आचार्य कनकनन्दी गुरुवरांशी निवेदन (प्रार्थना)	81
25.	आध्यात्मिक गुरु आचार्य कनकनन्दी जी मेरे भाव व अनुभव में	82
26.	ध्यान मेरा नाम है (ध्यान की आत्मकथा)	83
27.	समग्र क्रांति के हेतु	102
28.	अविरल-अनंत-महासंग्राम	104
29.	सीपुर वासिनी जिनवाणी-सरस्वती की स्तुति	105
30.	ऐतिहासिक आदर्श एक दिवसीय पञ्च कल्याणक व जैनेश्वरी दीक्षा	106
31.	स्वाध्याय तपस्वी आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव पूजन	107
32.	गुरुवर्य आचार्य कनकनन्दी संबंधी मेरे चार दिवसीय अनुभव	109
33.	मेरा अनुभव आचार्य कनकनन्दी संबंधी	111

आत्मकथा-आत्मव्यथा

अरिहन्त स्तुति (अर्घ्य)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : है अपना दिल तो आवारा.....)

अरिहन्त गुण..बहुत प्यारा...भव सिन्धु..तारणहारा...
अनंत ज्ञान दर्श सुख पूरा...राग द्वेष मोह से न्यारा...

जिनवाणी स्तुति

जिनवाणी ज्ञान..बहुत न्यारा...आत्मा-परमात्मा..बताने वाला...
द्रव्य गुण..पर्याय वाला...अंग पूर्व..पच्चीस वाला...

गुरुदेव स्तुति

गुरुदेव गुण..अलौकिक वाला...ज्ञान-ध्यान-तप त्याग वाला...
समता-शांति..निस्पृह वाला...आत्मिक-गुणगण वाला...

जैन धर्म स्तुति

जैन धर्म..वैश्विक वाला...वस्तु स्वरूप..बताने वाला...
सर्वोदय को करने वाला...आत्मिक सुख..देने वाला...

मैं ज्ञान का सूरज हूँ!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : संसार है इक नदिया....., तुझे सूरज कहूँ.....)

मैं ज्ञान का सूरज हूँ...अज्ञान तम बना...
कर्मों के बादलों से...अनादि से आवृत्त हुआ...(स्थायी)...

तथापि नाश मेरा...नहीं हुआ किञ्चित्...
केवल आवृत्त (हुई) रश्मि...कर्म नाश से प्रगटाऊँ...

भाव कर्म राग-द्वेष...मोह काम ईर्ष्या-तृष्णा...
इसी से हो आकर्षित/(प्रभावित)...आवृत्त हुए (द्रव्य) कर्म...(1)...

द्रव्य बादल निवृत्त हेतु...राग-द्वेष निवृत्त करूँ...
जिससे अनावृत्त बनूँ...ज्ञान प्रकाश प्रगट करूँ...

मुझे अनुभव हो रहा है...राग-द्वेषादि कम होने से...
ज्ञानानंद होते अनुभव...पूर्ण नष्ट से पूर्ण प्रगट...(2)...

इसी हेतु (ही) करूँ प्रयत्न...ख्याति पूजा लाभ से उपरत...
लंद-फंद-द्वंद्व मुक्त...संकल्प-विकल्प रिक्त...

शत्रु-मित्र भेद-भाव...धनी-गरीब ऊँच-नीच...
सत्ता-संपत्ति-वर्चस्व...त्याग से करूँ साधना उच्च...(3)...

समता-शांति-शुचिता...निस्पृह-निराडंबर-नम्रता...
सरल-सहज-सौम्यता...ज्ञान-ध्यान-आध्यात्मिकता...

आत्म-परीक्षण-निरीक्षण से...आत्म सुधार व उन्नति से...
कर्म बादलों से मुक्ति पाऊँ...'कनक' चाहे स्व-उपलब्धि...(4)...

सीपुर, दिनांक 11.10.2016, रात्रि 8.38

रीति-रिवाज से भी परे है जैन धर्म

(चाल : तुम दिल की....., छोटी-छोटी गैया.....)

रीति-रिवाज व पूजा-पाठ ही...नहीं है केवल जैन धर्म सारा...
पर्व-महोत्सव-तीर्थयात्रा ही...नहीं है केवल जैन धर्म सारा...

खान-पान व छूआ-छूत ही...नहीं है केवल जैन धर्म सारा...
वस्तु स्वभाव-आत्म स्वभाव की...प्राप्ति हेतु है जैन धर्म सारा...(1)...

जाति-पंथ-मत-भाषा-समाज...राष्ट्र नहीं है जैन धर्म सारा...
कानून-राजनीति-संविधान-इतिहास...नहीं है जैन धर्म सारा...

राग-द्वेष-मोह-ईर्ष्या-तृष्णा युक्त...काम नहीं है जैन धर्म सारा...
राग-द्वेष-मोहादि के नाशक है...जैन धर्म के रहस्य सारा...(2)...

इसी हेतु ही साधनभूत...पालनीय रीति-रिवाज सारा...
आत्म-उपलब्धि लक्ष्यविहीन...रीति-रिवाज व्यर्थ है सारा...

आत्मा के बिना शरीर यथा...नहीं होता चिदानन्द...
तथाहि आत्म कल्याण लक्ष्यविहीन...रीति-रिवाज ही न जैन धर्म...(3)...

आत्म स्वभाव है सच्चिदानंद...अनंत ज्ञान दर्शन सुखकंद...
स्वयंभू-सनातन-स्वयंपूर्ण...जन्म-जरा-मरण रहित आनंद...

ऐसा ही जो स्व-स्वरूपमय...श्रद्धान-ज्ञान-आचरण युक्त...
इस हेतु ही जो पाले रीति-रिवाज...उसका पालन यथार्थ युक्त...(4)...

इसी हेतु श्रावक धर्म पालनीय...दया दान सेवा पूजा उपवास...
दर्शन प्रतिमा से क्षुल्लक तक...श्रमण बनने हेतु सदा प्रयास...

संसार-शरीर-भोग से विरक्त...आत्म प्राप्ति हेतु बनते श्रमण...
ध्यान-अध्ययन-तप-त्याग सहित...समता-शांतिमय श्रमण...(5)...

ख्याति-पूजा-लाभ-राग-द्वेष रहित...निस्पृह निराडंबर शुचिता युक्त...
सत्ता-संपत्ति-वर्चस्व रिक्त...दश धर्म सोलह भावना सहित...

इसी से आत्मविशुद्धि द्वारा...समस्त कर्म होते विनाश...
तब शुद्ध-बुद्ध बनते है श्रमण...इसी हेतु 'कनक' करे प्रयास...(6)...

सीपुर, दिनांक 09.10.2016, रात्रि 10.08

परम उत्कृष्ट ही मेरा लक्ष्य

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की.....)

परम उतकृष्ट ही लक्ष्य है मेरा, जघन्य-मध्यम नहीं लक्ष्य है मेरा।
भले अभी हूँ मैं जघन्य स्तर पर, तो भी लक्ष्य मेरा है उत्कृष्टतम पर।।

मेरा तो लक्ष्य है स्वयं (मैं) को पाना, सच्चिदानंदमय स्वरूप होना।
शुद्ध-बुद्ध-आनंद धन होना, तन-मन-इन्द्रिय परे होना।। (1)

यही ही मेरा है परम लक्ष्य, सत्य-समता व सुख स्वरूप।
इसी के लिए ही ध्यान-अध्ययन, तप-त्याग आदि श्रमण धर्म।।

इसी से अतिरिक्त सभी साधन, साध्य अनुकूल ही करूँ साधन।
ख्याति-पूजा-लाभ या प्रसिद्धि धन, संकीर्ण पंथ-मत भीड़ सम्मान।। (2)

भौतिक निर्माण पत्रिका विज्ञापन, माईक-मंच-होर्डिंग कार्ड निमंत्रण।
गाजा-बाजा व साज-सज्जा प्रोग्राम, फोटोग्राफिंग व टी.वी. प्रोग्राम।।

भौतिक-लौकिक-सांसारिक लाभ, पुरस्कार मान्यता व प्रमाण पत्र।
सांसारिक भोगोपभोग सत्ता-संपत्ति, कीर्ति अमर करने की (सभी) प्रवृत्ति।। (3)

दबाव-प्रलोभन व वर्चस्व-भय, प्रतिस्पर्द्धा व जय व पराजय।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश परे, अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा परे।।

राग-द्वेष-मोह-ईर्ष्या व तृष्णा, निंदा-अपमान वाद-विवाद-घृणा।
समस्त सीमा व बंधनों से परे, स्वरूप में रमण 'कनक' को प्यारे।। (4)

इसके योग्य आहार-विहार-निहार, निवास-संगति भी करता हूँ।
मौन एकांत व निस्पृह निराडम्बर, सामाजिक लंद-फंद से विरक्त हूँ।।

शोध-बोध व प्रयोग-परीक्षण से, अनुभव को बढ़ाता जा रहा हूँ।
अनुभव से साध्य-साधन को पाकर, आगे ही आगे बढ़ता जा रहा हूँ।। (5)

सीपुर, दिनांक 07.10.2016, मध्याह्न 2.58

स्व-पर हेतु भी आत्मपतन न करूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

मैं मेरा सदा आत्मविकास करूँ, समता-शांति से मोक्ष तक मैं करूँ।
राग द्वेष मोह को सर्वथा त्यागूँ, स्व-पर हेतु भी राग द्वेषादि न करूँ।। (1)

आत्मपतन होता राग-द्वेष-मोह से, आत्म उत्थान होता राग-द्वेष-मोह त्याग से।
राग-द्वेष-मोह होते विभाव भाव, समता-शांति होते आत्म स्वभाव।। (2)

विभाव से पतन होता निश्चय, स्वभाव से उत्थान होता निश्चय।
अतएव राग-द्वेष मोह मैं त्यागूँ, समता-शांति को सर्वथा भजूँ।। (3)

अतः राग-द्वेषादि न करूँ कदापि, स्व-निमित्त या परनिमित्त अपि।
शत्रु-मित्र-भाई-बंधु-अपना-पर, स्वधर्मी-विधर्मी या दुष्ट-पामर।। (4)

कोई कुछ करे या नहीं भी करे, कुछ भी माने या नहीं भी माने।
सभी में समता मैं रखूँ सर्वदा/(सर्वथा), पाप-पापी की न करूँ अनुमोदना।। (5)

गुण-गुणी दोष-दोषी से शिक्षा लहूँ, आत्मविकास हेतु मैं सुगुण लहूँ।
गौ-हंस-मधुप सम मैं बनूँ, वीतराग विज्ञानयुक्त निस्पृह बनूँ।। (6)

मेरा कर्त्ता-भोक्ता मैं ही सदा बनूँ, स्व-पर-विश्व की मंगल कामना करूँ।
परोपकार भी यथायोग्य मैं करूँ, किन्तु राग-द्वेष-मोह नहीं करूँ।। (7)

मेरा परम आदर्श अरिहंत-सिद्ध, आदर्श अनुकरण से बनूँ अरिहंत-सिद्ध।
यथायोग्य उनके गुणों को विकास करूँ, 'कनक' शुद्ध-बुद्ध-आनंद बनूँ।। (8)

सीपुर, दिनांक 09.10.2016, मध्याह्न 12.37

(भाषा विज्ञान एवं जैन आध्यात्मिक रहस्य संबंधी कविता)

कामना से परे भावना,
चाहिए से परे आवश्यकता व अनिवार्यता

(कामना (इच्छा) < भावना, चाहिए (चाह) < आवश्यक < अनिवार्यता)

(राग : छोटी-छोटी गैया....., इक परदेशी.....)

कामना से परे मैं भावना भाऊँ, भावना अनुसार काम मैं करूँ।
कामना तो इच्छा राग द्वेष (मोह) युक्त, भावना आत्मिक गुण राग द्वेष (मोह) रिक्त।। (1)

चाह तो असीम है आवश्यक सीमित, चाह न पूरी होती आवश्यक संभव।
अनिवार्य तो अपरिहार्य होना विधेय, ध्येय प्राप्ति हेतु निम्नतम उपाय।। (2)

कामना से परे होता धर्म साधन, 'इच्छा निरोध तप' आगम में वर्णन।
सांसारिक उपलब्धि हेतु होती कामना, राग द्वेष मोह युक्त होती कामना।। (3)

प्रशस्त निदान होती शुभ भावना, दुःख क्षय-कर्म क्षय हेतु होती भावना।
सोलह कारण भावना आगम प्रणीत, तीर्थंकर बनने हेतु ये निमित्त।। (4)

मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ भावना, ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि कामना।
द्वादश अनुप्रेक्षा होती बारह भावना, संसार-शरीर भोगोपभोग की होती कामना।। (5)

'चाह (चाहिए) गई चिंता मिटी' नीति प्रसिद्ध, 'कामना से भव नाश' धर्म प्रसिद्ध।
'कामना ही दुःख' है महात्मा बुद्ध ने कहा, 'शुद्ध भावना से सिद्धि' वीर ने कहा।। (6)

आवश्यक भी होते हैं छह प्रकार, आवश्यक होते हैं ज्ञानादि उपकरण।
आवश्यक की अनिवार्यता आत्मसाधना, आत्मसाधना बिन आवश्यक अप्रयोजन।। (7)

फैशन-व्यसन भोगोपभोग पंच पाप, चारों संज्ञाएँ होती हैं इच्छा उपज।
इच्छा निरोधमय होते हैं बारह तप, आहार औषधि उपकरणादि हैं आवश्यक।। (8)

जीवन हेतु अनिवार्य है श्वासोच्छवास, साधन चाहिए साध्य-सिद्धि निमित्त।
शुभ भाव होता है आवश्यक शुद्ध निमित्त, शुद्ध होने पर स्वयं ही साधना साध्य।। (9)

अनिवार्यता मेरी है आत्म साधना, उस हेतु ही आवश्यक व भावना।
चाह (चाहिए) से पेरे अनिवार्य को स्वीकारूँ, 'कनक' आत्मविकास अवश्य करूँ।। (10)

सीपुर, दिनांक 03.10.2016, रात्रि 9.09

भूत से शिक्षा-वर्तमान के प्रयत्न से भावी सफलता पाऊँ

(समय प्रबंधन के मेरे सूत्र)

(चाल : एक परदेशी तेरा.....)

भूत से शिक्षा ले (मैं) आगे बढ़ना चाहता हूँ, संप्रति (वर्तमान) प्रयत्न से लक्ष्य पाना चाहता हूँ।
केवल भूत की चर्चा नहीं चाहता/(करता) हूँ, वर्तमान को व्यर्थ भी नहीं करता हूँ।। (1)

भूत भविष्यत दोनों अभी अभाव है, प्रध्वंसाभाव-प्राग्भाव सहित दोनों से।
अभाव में काम भी न संभव होता, वर्तमान में ही कार्य संभव होते।। (2)

भावी लक्ष्यानुसार अभी (मैं) काम करता, भविष्य की कल्पना मैं अभी करता।
तदनुकूल पुरुषार्थ अभी मैं करता, स्तुति पाठक भाट गपोडशंख न बनता।। (3)

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एक साथ ही होते, तीनों ही युगपत् एक समय में होते।
तीनों ही परस्पर कार्य-कारण होते, तीनों वर्तमान में ही संभव होते।। (4)

वैश्विक कार्य-कारण यह सिद्धांत, संसार से लेकर मोक्ष पर्यंत।
भौतिक से लेकर आध्यात्मिक पर्यंत, व्यक्ति से लेकर वैश्विक पर्यंत।। (5)

अनावश्यक भूत की चिंता/(चर्चा) न करूँ, भावी की नकारात्मक कल्पना न करूँ।
गुण-दोष समीक्षा शिक्षा मैं लहूँ, वर्तमान पुरुषार्थ से भावी निर्माण करूँ।। (6)

स्वयं का कर्त्ता-धर्त्ता-भोक्ता मैं हूँ, संसार से लेकर मोक्ष तक मैं हूँ।
अतः मैं स्वयं में ही निर्भय निश्चय से, आवलंबन लेता हूँ मैं व्यवहार से।। (7)

निश्चय काल तो स्वयंभू सनातन है, व्यवहार काल भी अनादि अनंत तक।
मेरा स्व-समय तो (मैं) ही निश्चयनय से, 'कनक' अतः तीनों काल में स्वयं निश्चय से।। (8)

सीपुर, दिनांक 03.10.2016, प्रातः 9.22

स्व-मैनेजमेंट के मेरे अनुभूत-सूत्र

(सफलता प्राप्त करने के मेरे अनुभूत-नियम)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

आत्म-विश्लेषण-आत्म-सुधार हेतु...कर रहा हूँ मैं स्व-संबोधन...
जिससे मैं शिक्षा-प्रेरणा लेकर...करता रहूँ आत्मकल्याण...

दीर्घकाल से मुझे अनुभव आ रहे...अनेक क्षेत्र के अनेक विध...
महान् लक्ष्य-पवित्र भाव से...प्राप्त होते हैं लाभ-विविध...(1)...

एकाग्रचित्त-दृढ़ संकल्प से...तथाहि सतत सुपुरुषार्थ से...
सही कार्य होते हिताहित विवेक से...कार्य-कारण संबंधों से...

समता-शांति-विनम्र भाव से...होते हैं कार्य धैर्य-साहस से...
कठिन काम भी सरल होते हैं...तन-मन-इन्द्रिय-आत्म-शक्ति से...(2)...

राग-द्वेष ईर्ष्या तृष्णा रहित...आकुलता-व्याकुलता-द्वन्द्व रहित...
अस्त-व्यस्त-संत्रस्त रहित...उत्तम कार्य होते क्रमबद्ध रूप...

आलस्य प्रमाद (अस्वस्थ) प्रतिस्पर्द्धा रहित...स्व-पर-विश्व कल्याण सहित...
दिखावा आडम्बर ढोंग रहित...होते उत्तम काम शंका रहित...(3)...

दीन-हीन-अहंकार रहित...भय-शोक-संकीर्ण स्वार्थ रहित...
होते उत्तम काम 'स्वाभिमान' सहित...'सोऽहं' व 'अहं' भाव सहित...

परनिन्दा अपमान प्रपञ्च रहित...परहानिकारक भाव-काम रहित...
परस्पर सहयोग सौहार्द्र सहित...दबाव वर्चस्व घृणा रहित...(4)...

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि रहित...सरल सहज भाव सहित...
सहयोगी जनों को श्रेय देकर...स्वयं निस्पृह आकिञ्चन्य सहित...

दूरदृष्टि सम्पन्न योजना सहित...सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव सहित...
हीनयोग-अतियोग-मिथ्यायोग रहित...सम्यक् साधन सहित...(5)...

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा रहित...संकल्प-विकल्प-संक्लेश रहित...
दबाव-प्रलोभन-अंधानुकरण रिक्त...सनम्र सत्याग्रह सहित...

आत्मविश्वास-अनुभव सहित...दोष से शिक्षा ले काम करने पर...
होते उत्तम काम कौन क्या कहते...क्या मानते की चिन्ता छोड़ने पर...(6)...

नवीन-नवीन ज्ञानार्जन से...अन्य से भी शिक्षा-प्रेरणा लेकर...
काम से शिक्षा व सुधार करने से...काम होते हैं उत्तमतर...

गुणग्राही व कृतज्ञ बनकर...श्रेष्ठतम की ही कल्पना कर...
हानि-लाभ-मान-अपमान में...समता रख शिक्षा लेने पर...(7)...

पुण्य भाव पुण्य कर्म से गुणी...गुरुजनों के मार्गदर्शन से...
उत्तम काम होते यथायोग्य...समय पर साध्य-साधन से...

एकांत मौन अनेकांत दृष्टि से...हित मित प्रिय वचन से...
उदार-व्यापक-समन्वय दृष्टि से...प्रतिप्रश्न सह शिक्षा पद्धति से...(8)...

स्व-पर-प्रोत्साहन व सम्मान से...सुकार्य हेतु अनुमोदना से...
सुगुणी-दुर्गुणी से शिक्षा लेकर...सुकार्य करता हूँ अनुभव से...

महापुरुषों के आदर्श जीवन से...शिक्षा व प्रेरणा प्राप्त करके...
कार्य संपादन होते सम्यक् रूप से...'कनक' काव्य रचा अनुभव से...(9)...

सीपुर, दिनांक 02.10.2016, रात्रि 9.18

संदर्भ-

उद्यमः साहसं धैर्यं बलं बुद्धिः पराक्रमः।
षडेते यस्य विद्यन्ते तस्य देवोऽपि शक्यते।। (455)

उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम ये छह जिसके पास हैं देव भी उसके वश रहते हैं।

उत्साह-संपन्नमदीर्घ सूत्रं, क्रिया-विधिज्ञं व्यसनेष्व सक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ सौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं वाञ्छति वासहेतोः।। (456)

जो उत्साह से सहित है, शीघ्रता से कार्य करता है, कार्य करने की विधि को जानता है, व्यसनों में अनासक्त है, शूरवीर है, कृतज्ञ है और दृढ़ मित्रता वाला है। लक्ष्मी, निवास के हेतु उस पुरुष के समीप स्वयं पहुँचना चाहती है।

गुणाः कुर्वन्ति दूतत्वं दूरेऽपिवसतां सताम्।

केतकी गन्ध माघ्राय स्वयं गच्छन्ति षट्पदाः।। (457)

गुण, दूर भी रहने वाले मनुष्यों को दूतपन करते हैं क्योंकि केतकी की गंध को सूँघकर भ्रमर स्वयं ही उसके पास पहुँच जाते हैं।

परम सत्य व आत्मतत्त्व का परिज्ञान हो तो कैसे!?

(यथार्थ-सत्य के परिज्ञान-लेखन-कथन हेतु)

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमधाभिधास्ये।। (3) (स. तंत्र)

(चाल : तुम दिल की.....)

हिन्दी पद्यानुवाद...

सर्वज्ञ कथित गणधर रचित, आगम के परिज्ञान से।
हेतु-अनुमान-तर्क के द्वारा, समाहित अन्तःकरण से।।

सम्यक् प्रकार अनुभव करके, कथन/(लेखन) करना संभव है।
अन्यथा सत्य व आत्मतत्त्व का, परिज्ञान कथन न संभव है।। (1)

समीक्षा-

परमसत्य व आत्मतत्त्व का, परिज्ञान के उपायों का वर्णन है।
आगम अध्ययन व हेतु-अनुमान, तर्क व एकाग्रमन है।।

सही प्रकार अनुभव करने पर ही, कथन-लेखन संभव है।
अन्यथा केवल रीति-रिवाज व, देखा-सुना से न संभव है।। (2)

परमसत्य व आत्मतत्त्व, सबसे गहन व गंभीर है।
सर्वज्ञ बिना कोई न जान सके, कैसे कथन संभव है।।

अतएव सर्वज्ञ द्वारा कथित, व गणधर द्वारा रचित।
आगम के अध्ययन चाहिए, लौकिक ज्ञान व समर्थ।। (3)

केवल आगम को भी पढ़ने मात्र से, न होता सत्य परिज्ञान।
इस हेतु चाहिए अंतःकरण में, एकाग्रता अन्यथा न होता सही ज्ञान।।

नय-प्रमाण व तर्क-अनुमान, तथाहि कार्य-कारण संबंध से।
सही ज्ञान होता है सम्यक् अनुभव से, जिससे (होता) कथन सम्यक्।। (4)

आत्मतत्त्व व परम सत्य इन्द्रिय यंत्रों से न ज्ञात है।
लौकिक पढ़ाई लोक परंपरा से, देखा-देखी न संभव है।।

चंचल मन से न सही ज्ञान होता, केवल सुनने मात्र से।
अस्त-व्यस्त व संत्रस्त मन से, परिज्ञान न होता देखने से।। (5)

आत्मतत्त्व व परम सत्य को, पूर्णतः न जानते वैज्ञानिक।
दार्शनिक, लेखक, चिंतक, आचार्य व गणधर तक।।

उसे क्या जान पायेंगे सामान्य लोग जो राग-द्वेष-मोह युक्त।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश सहित, विषय-वासना में आसक्त।। (6)

ऐसे लोग जो नहीं जान पाते, लौकिक सामान्य विषय।
शब्द से लेकर भाषा तक व, नैतिक-सदाचार विषय।।

देखा-सुना सामान्य विषय को, जो न सही समझ पाते।
वे कैसे जान पायेंगे परम सत्य को, 'कनक' भी यह अनुभव करते।। (7)

क्षेपक-

कुछ होते हैं भद्रजन बिना जाने भी रहते सरल-सहज।
यथा भोगभूमिज मनुष्य पशु भी, होते हैं शांत व सहज।।

शुभ लेश्या व मंद कषाय से, होते हैं वे विनम्र व मधुर।
ऐसे जीव परम सत्य ज्ञान बिन, भी करते सभ्य-व्यवहार।। (8)

सीपुर, दिनांक 04.10.2016, रात्रि 3.08

स्व-दोष परिज्ञान हेतु ज्ञान बढ़ाना विधेय

(पूर्व की अज्ञानता आगे ज्ञान होने पर ज्ञात होती)

श्लोक- यद्यदः चरितं पूर्वं तत्तदज्ञानचेष्टितम्।
उत्तरोत्तर विज्ञानाद्योगिनः प्रतिभासते।। (251) आत्मानुशासन

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

हिन्दी पद्यानुवाद-

स्व-दोष पूर्व के ज्ञान होते हैं, जब आगे से आगे ज्ञान बढ़ता।
अज्ञानपूर्वक की गई चेष्टाएँ, ज्ञान के वृद्धि से योगी को प्रतिभास होता।। (ध्रुव)

समीक्षा-

जन्मान्ध को यथा ज्ञान न होता, प्रकाश तथा अंधकार का।
तथाहि जो दोष होते अज्ञानता से, अज्ञान दूर हुए बिन न ज्ञात होता।।

अंधकार न दूर होता अंधेरा से, अज्ञान भी दूर न होता अज्ञान से।
अज्ञानी न जानते स्व-दोषों को, जब तक वो अज्ञान न दूर होता।।

आगे-आगे बढ़ने से दूरी होती कम, स्थिर रहने से दूरी न होती कम।
तथाहि अज्ञान त्यागे बिना कभी, अज्ञान अवस्था के दोष न होंगे कम।।

गुण-दोष विवेक न होता अज्ञानी को, स्व-दोष को भी गुण मानता।
अन्य के गुण को भी दोष मानता, उदित सूर्य को भी अंधा नहीं देखता।।

अतः वह संकीर्ण कूपमण्डुक सम होता, कूप को ही ब्रह्माण्डमय मानता।
हंस सम विवेकी को भी अज्ञानी मानता, स्व को ज्ञानी मानकर घमण्डी होता।।

ऐसे जन न स्व-दोषों को भी जानते, नहीं मानते व नहीं छोड़ते।
स्व अज्ञानमोह दूर होने पर ही, ज्ञानीगुरु का भी उपदेश मानते।।

अनादि काल से ही हर जीव भी, मोह अज्ञान से आछन्न होकर।
परम-सत्य, हित-सत्य न जाने, जिससे भ्रमण करते संसार।।

सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव को पाकर, सच्चे गुरु के उपदेश को सुनकर।
निकट भव्य जीव बनते हैं सुदृष्टि, जिससे वे बनते हैं सम्यग्ज्ञानी।।

तब से प्रारंभ होता वीतराग विज्ञान, हिताहित विवेक या भेद विज्ञान।
जिससे होता है सम्यक् आचरण, श्रावकाचार व श्रमणाचरण।।

ज्ञान-ध्यान-तप से करते दोष दूर, प्रतिक्रमण व प्रायश्चित्त में तत्पर।
आत्मविशुद्धि से साधु बनते सिद्ध, स्वदोष दूर हेतु 'कनक' सदा ततपर।।

धर्म-दर्शन विज्ञान कानून में पढ़ा, आयुर्वेद मनोविज्ञान प्रायश्चित्त में।
अनेक भक्त-शिष्य लोगों से जाना, स्व-पर अनेक विध अनुभव से।।

सीपुर, दिनांक 05.10.2016, रात्रि 8.38

संदर्भ-

जीवे प्रमाद जनिताः प्रचुरा प्रदोषाः।
यस्मात् प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति।।
तस्मात्तदर्थममलं मुनि बोधनार्थं।
वक्ष्ये विचित्र भव कर्म विशोधनार्थम्।। (1)

भावार्थ-जिस प्रतिक्रमण से, जीव के द्वारा प्रमाद से उत्पन्न होने वाले अनेक दोष क्षय को प्राप्त होते है, तथा अनेक भवों में उपार्जित कर्मों का क्षण-मात्र में नाश होता है। इसलिये मुनियों को संबोधन के लिए, मैं ऐसे मल रहित निर्मल प्रतिक्रमण को कहूँगा। (यह प्रतिक्रमण के रचयिता श्री गौतम स्वामी का प्रतिज्ञा सूत्र है।)

''भूतकालीन दोषों का निराकरण करना प्रतिक्रमण है।''

उद्देश्य सूत्र

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना,
रागद्वेष मलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम्।
त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र भवतः भीपादमूलेऽधुना,
निंदा पूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषुः सत्पथे।। (2)

भावार्थ-हे तीन लोक के अधिपति जिनेन्द्रदेव! मुझ पापी, दुष्ट, अज्ञानी, मायाचारी, लोभी के द्वारा राग-द्वेष रूपी मल से मलीन मन के द्वारा जिन पाप-कर्मों का उपार्जन किया गया है, उन पाप कर्मों को मैं अनंत चतुष्टय रूप लक्ष्मी से सम्पन्न आपके चरण-कमलों में निंदापूर्वक छोड़ता हूँ तथा अब इस समय निरंतर सन्मार्ग में प्रवृत्ति करने की इच्छा करता हूँ। (जिनेन्द्र की साक्षीपूर्वक पाप-कर्मों का त्याग करता हूँ। इस प्रकार यह संकल्प सूत्र है।)

संकल्प सूत्र

खम्मामि सव्व-जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व भूदेसु वैरं मज्झं ण केण वि।। (3)

भावार्थ-मैं संसार के समस्त प्राणियों के प्रति क्षमा भाव धारण करता हूँ। समस्त प्राणी भी मुझ पर क्षमा भाव धारण करें। संसार के सभी जीवों में मेरा मैत्री भाव है तथा किसी भी जीव के साथ मेरा वैर-विरोध नहीं हैं।

राग परित्याग सूत्र

राग बंध पदोसं च हरिसं दीण-भावयं।

उस्सुगत्तं भयं सोगं रदि-मरदिं च वोस्सरे।। (4)

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! मैं आपकी साक्षीपूर्वक राग-द्वेष-बंध, हर्ष, दैन्य प्रवृत्ति/भावना, पञ्चेन्द्रिय विषयों की वासना का आकर्षण, लोलुपता, आसक्ति, भय, शोक, रति और अरति का त्याग करता हूँ।

पश्चात्ताप सूत्र

हा! दुट्ठ कयं हा! दुट्ठ-चिंतियं भासियं च हा!

दुट्ठं अंतो-अंतो डज्झमि पच्छत्तावेण वेदंतो।। (5)

1. हाँ! यदि मैंने काय से कोई दुष्ट कार्य किया हो।

2. हाँ! यदि मैंने मन से कोई दुष्ट चिन्तन किया हो और

3. हाँ! यदि मैंने कोई दुष्ट वचन बोला हो तो मैं उन मन-वचन-काय की दुष्ट क्रियाओं को दुष्कृत-अशुभ समझता हुआ, पश्चात्ताप से भीतर ही भीतर पीड़ित हुआ जल रहा हूँ अर्थात् अपने दुष्कृत्यों से मेरा अन्तःकरण जल रहा है अतः हे जिनेन्द्र! आपकी साक्षीपूर्वक इनका त्याग करता हूँ।

दव्वे खेत्ते काले भावे य कदावराह-सोहणयं।

णिंदण-गरहण-जुत्तोमण-वच-कायेण पडिक्कमणं।। (6)

भावार्थ-द्रव्य-आहार, शरीर आदि। **क्षेत्र**-वसतिका, मार्ग, जिनालय आदि। **काल**-पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न आदि। **भाव**-संकल्प-विकल्प आदि।

मैं, द्रव्य-शरीर आदि, क्षेत्र-वसतिका, मार्ग आदि, काल-भूत-भावी, वर्तमान अथवा पूर्वाह्न और अपराह्न में किये गये अपने अपराधों की शुद्धि के लिए मन-वचन-काय से प्रतिक्रमण करता हूँ।

ए-इंदिया, बे-इंदिया, ते-इंदिया, चतुरिंदिया, पंचिंदिया, पुढविकाइया-आउ-काइया, तेउ-काइया, वाउ-काइया, वणप्फदि-काइया, तस-काइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र देव! मैंने एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त किसी भी जीव को मारना, पीड़ा देना, एकदेश प्राणों का घात करना, विराधना करना आदि पाप-कार्यों को

स्वयं किया हो, दूसरों से कराया हो अथवा करने वालों की अनुमोदना की हो तो मेरे पाप मिथ्या होवें।

स्व-दोष परिज्ञान हेतु ज्ञान बढ़ाना विधेय

(पूर्व की अज्ञानता आगे ज्ञान होने पर ज्ञात होती)

श्लोक- यद्यदः चरितं पूर्वं तत्तदज्ञानचेष्टितम्।
उत्तरोत्तरविज्ञानाद्योगिनः प्रतिभासते।। (251) आत्मानुशासन

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

हिन्दी पद्यानुवाद-

स्व-दोष पूर्व के ज्ञान होते हैं, जब आगे से आगे ज्ञान बढ़ता।
अज्ञानपूर्वक की गई चेष्टाएँ, ज्ञान के वृद्धि से योगिको प्रतिभास होता।। (ध्रुव)

समीक्षा-

जन्मान्ध को यथा ज्ञान न होता, प्रकाश तथा अन्धकार का।
तथाहि जो दोष होते अज्ञानता से, अज्ञान दूर हुए बिन न ज्ञात होता।।

अंधकार न दूर होता अंधेरा से, अज्ञान भी दूर न होता अज्ञान से।
अज्ञानी न जानते स्व-दोषों को, जब तक वो अज्ञान न दूर होता।।

आगे-आगे बढ़ने से दूरी होती कम, स्थिर रहने से दूरी न होती कम।
तथाहि अज्ञान त्यागे बिना कभी, अज्ञान अवस्था के दोष न होंगे कम।।

गुण-दोष विवेक न होता अज्ञानी को, स्व-दोष को भी गुण मानता।
अन्य के गुण को भी दोष मानता, उदित सूर्य को भी अंधा नहीं देखता।।

अतः वह संकीर्ण कूपमण्डुक सम होता, कूप को ही ब्रह्माण्डमय मानता।
हंस सम विवेकी को भी अज्ञानी मानता, स्व को ज्ञानी मानकर घमण्डी होता।।

ऐसे जन न स्व-दोषों को भी जानते, नहीं मानते व नहीं छोड़ते।
स्व अज्ञानमोह दूर होने पर ही, ज्ञानीगुरु का भी उपदेश मानते।।

अनादि काल से ही हर जीव भी, मोह अज्ञान से आछन्न होकर।
परम-सत्य, हित-सत्य न जाने, जिससे भ्रमण करते संसार।।

सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव को पाकर, सच्चे गुरु के उपदेश को सुनकर।
निकट भव्य जीव बनते हैं सुदृष्टि, जिससे वे बनते हैं सम्यग्ज्ञानी।।

तब से प्रारंभ होता वीतराग विज्ञान, हिताहित विवेक या भेद विज्ञान।
जिससे होता है सम्यक् आचरण, श्रावकाचार व श्रमणाचरण।।

ज्ञान-ध्यान-तप से करते दोष दूर, प्रतिक्रमण व प्रायश्चित्त में तत्पर।
आत्मविशुद्धि से साधु बनते सिद्ध, स्व-दोष दूर हेतु 'कनक' सदा तत्पर।।

धर्म-दर्शन विज्ञान कानून में पढ़ा, आयुर्वेद मनोविज्ञान प्रायश्चित्त में।
अनेक भक्त-शिष्य लोगों से जाना, स्व-पर अनेक विध अनुभव से।।

सीपुर, दिनांक 05.10.2016, रात्रि 8.38

स्वगुणों के स्मरणादि से बढ़ते स्वगुण व घटते दुर्गुण

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू स्व-गुणों का ध्यान (स्मरण, वर्णन) करऽऽ
स्वगुण तेरे अनंतज्ञानादि गुणऽऽ राग द्वेष मोहादि कर हननऽऽ
स्व-शुद्ध स्वरूप करो ध्यानऽऽ (ध्रुव)

शुद्ध-बुद्ध-सिद्ध-आनंद तू हो!ऽऽ राग द्वेष मोहादि से परेऽऽ
तन-मन-इन्द्रिय-नाम से परे होऽऽ अनंतज्ञान दर्शन सुखमयऽऽ
स्वयंभू सनातन आनंद धनऽऽ (1)

स्व-स्वरूप चिंतन स्मरण ध्यान सेऽऽ राग द्वेष मोहादि होते क्षीणऽऽ
समता-शांति-आह्लाद प्रगटेऽऽ दुःश्चिन्ता-संक्लेश होते क्षीणऽऽ
आत्मविश्वास ज्ञान होते वर्द्धमानऽऽ (2)

राग द्वेष मोह कामादि चिंतन सेऽऽ होते हैं रागादि विवर्द्धमानऽऽ
जिससे होती तदनुकूल प्रवृत्तिऽऽ जिससे बंधती पाप प्रकृतिऽऽ
जिससे होती संसार वृद्धिऽऽ (3)

अशुभ चिंतन से होता पापों का बंधनऽऽ शुभ चिंतन से होता पुण्यबंध
आत्मचिंतन से आत्मा की उपलब्धिऽऽ पुण्य-पाप दोनों कर्म क्षीणऽऽ
शुद्ध-बुद्ध-आनंद परिपूर्णऽऽ (4)

विकथा चिंतन कथन के द्वारा वऽऽ परनिंदा अपमान आदि सेऽऽ
होते हैं राग-द्वेष-कलह-ईर्ष्या-घृणाऽऽ जिससे होते विविध पापबंधऽऽ
अतः त्याग करो इसका संबंधऽऽ (5)

उत्तम स्वात्म चिंतन होता हैऽऽ देहचिंता होती है मध्यमऽऽ
अधम काम चिंता होती हैऽऽ परचिंता होती अधमाधमऽऽ
अतः 'कनक' करो आत्मचिंतन/(कथन)ऽऽ (6)

सीपुर, दिनांक 06.10.2016, मध्याह्न 2.48

संदर्भ-

आत्मध्यान का फल-स्वरूप

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारबहिः स्थितेः।
जायते परमानन्दः, कश्चिद्योगेन योगिनं।। (47) (इष्टो.)

He who is firmly established in his own self and keeps away from the worldly intercourse a supreme kind of happiness is produced in the being of such a yogi!

शिष्य प्रश्न करता है कि आत्मा स्वरूप में लीन रहने वालों को क्या होता है? गुरु उत्तर देते हैं कि-

देहादि से निवृत्त होकर जो स्व-आत्मा में ही लीन होकर प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहार से दूर होकर ध्यान करता है ऐसे योगी को स्व-आत्मा ध्यान से एक अनिर्वचनीय परम आनंद उत्पन्न होता है जो आनंद अन्य में असंभव है।

समीक्षा-प्रत्येक आत्मा अनंत अक्षय-ज्ञान-घन या परमानंद स्वरूप है परन्तु जिस प्रकार घने बादल के कारण सूर्य रश्मि प्रकट नहीं होती है उसी प्रकार घने कर्म के कारण राग-द्वेष-संकल्प-विकल्प के कारण वह स्वभाव लुप्त प्रायः है। तथापि जिस प्रकार बादल हटने पर, घटने पर सूर्य रश्मि प्रगट हो जाती है उसी प्रकार साधना के बल पर कर्मादि क्षीण होने पर, विलीन होने पर स्व में निहित आनंद प्रकट हो जाता है। यह आनंद जीव का स्वाभाविक गुण या आनंद है। इस आनंद को प्राप्त योगी के लिए संसार के समस्त सुख, वैभव तुच्छ प्रायः प्रतिभासित होता है, दुःख रूप में दिखाई देता है। इसे ही सच्चिदानंद, आत्मानंद, परमानंद, अनंत सुख, अलौकिक

आनंद, इन्द्रियातीत आनंद, ब्रह्मानंद आदि नाम से अभिहित किया जाता है। इस आनंद को ही प्राप्त करने के लिए समस्त धार्मिक विधियाँ की जाती है। बड़े-बड़े राजा, महाराजा, चक्रवर्ती आदि भी इस आनंद को प्राप्त करने के लिए समस्त वैभव त्याग कर सर्व संन्यास लेकर ध्यान करते है। हर संप्रदाय के महापुरुष साधु-संत इस आनंद को प्राप्त करने के लिए साधना तथा ध्यानरत रहते हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार महर्षि कपिल, पातञ्जली यहाँ तक कि हिन्दू धर्म के सर्वश्रेष्ठ देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी इस आनंद को प्राप्त करने के लिए समस्त, कार्यकलाप गतिविधियों को छोड़कर ध्यान लीन रहते हैं। जैन धर्म के अनुसार शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ जो स्वयं गृहस्थावस्था में चक्रवर्ती, कामदेव थे तथा जिनके दो कल्याणक हो गए थे और तीन ज्ञान के भी धारी थे वे भी इस परम् आनंद को प्राप्त करने के लिए समस्त वैभव त्यागकर, साधु बनकर आत्म ध्यान में लीन हो गए।

गीता में महामानव नारायण श्री कृष्ण ने अर्जुन के लिए ध्यान का वर्णन करते हुए निम्न प्रकार विवेचन किया है-

यत्रो परमते चित्तं निरूद्धं योग सेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्चन्मात्मानि तुष्यति।।
सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यामतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चेवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचारयते।।
तं विद्याददुःखसंयोग वियोगं योग संज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।।

योग के सेवन से अंकुश में आया हुआ मन जहाँ शांति पाता है, आत्मा से ही आत्मा को पहचानकर आत्मा में जहाँ मन संतोष पाता है और इन्द्रियों से परे और बुद्धि से ग्रहण करने योग्य अनंत सुख का जहाँ अनुभव होता है, जहाँ रहकर मनुष्य मूल वस्तु से चलायमान नहीं होता और जिसे पाने पर दूसरे किसी लाभ को वह उससे अधिक नहीं मानता और जिसमें स्थिर हुआ महादुःख से भी डगमगाता नहीं, उस दुःख के प्रसंग से रहित स्थिति का नाम योग की स्थिति समझना चाहिए। यह योग ऊबे बिना दृढ़तापूर्वक साधने योग्य है।

प्रशान्तमनस ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।

उपैति शांत रजसं ब्रह्मयूतकल्मषम्।

जिसका मन भली-भाँति शांत हुआ है जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जन्नेव सदात्मानं योगी विगत कल्मषः।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमनन्तं सुखमश्नुते।।

आत्मा के साथ निरंतर अनुसंधान करते हुए पाप रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्म प्राप्ति रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

आत्मानंद से कर्म-नष्ट

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम्।

न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्यचेतनः।। (48)

Self produced happiness is constant by burning up the karmic fuel in large quantities, while the yogi, indifferent to the external pain, is no affected by it in the least!

वह आत्मानंद प्रवाह रूप से आने वाली प्रचुर कर्म संतति को निर्दहन कर देता है जिस प्रकार अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है। ऐसा आनंद से सम्पन्न योगी परिषह, उपसर्ग क्लेशादि बाह्य दुःख को अनुभव नहीं करता है। इसलिए वह उससे संक्लेश को प्राप्त नहीं होता है, खेद को प्राप्त नहीं होता है।

समीक्षा-जब आत्मा स्व-आत्मा में ही स्थिर हो जाता है, रम जाता है, लीन हो जाता है तब स्वयं में अनंत अक्षय आनंद का अनुभव करता है। अरिहंत, सिद्ध भगवान् पूर्णतः स्व-आत्मा में स्थिर होने के कारण वे संपूर्ण दुःखों से रहित अक्षय अनंत आत्मोत्थ सुख का अनुभव करते हैं। सिद्ध भगवान् समस्त द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म अथवा घातिया कर्म, अघातिया कर्म नष्ट करके स्वयं में पूर्ण निस्पन्द रूप से लीन होने के कारण अनंत सुख का अनुभव करते हैं तथा अरिहंत भगवान् घातिया कर्म को नष्ट करने के कारण अनंत सुख को अनुभव करते हैं। घातिया कर्म के अभाव से मोह, राग, द्वेष, तृष्णादि क्षय हो जाते हैं तथा अनंत सुख, वीर्य, ज्ञान दर्शन प्राप्त कर लेते हैं जिसके कारण वे शरीर संबंधी या पुण्य-पाप संबंधी या समवसरण संबंधी किसी भी प्रकार के सुख-दुःख वेदन नहीं करते है।

'आभार ध्यान' आपकी आंतरिक प्रकृति को आपके मन की सतह पर आने के लिए प्रोत्साहन व स्वीकृति देने की दिशा में पहला कदम है। अपने जीवन की सभी अच्छाइयों के बारे में कुछ समय सोचने से आपके पूरे दिन पर एक अच्छा प्रभाव पड़ता है। यह प्रमुख मानसिक व भावनात्मक कौशलों में से एक भी है, जिसका प्रयोग वे लोग करते हैं जो बीमारी या काफी कष्ट के बावजूद विपरीत परिस्थितियों का सामना करने का साहस दिखाते हुए बहुत अच्छी तरह से करते हैं। जीवन के अविश्वसनीय रूप से कठिन होने की स्थिति में भी वे किसी न किसी चीज या किसी न किसी व्यक्ति को आभार प्रकट करने के लिए पाने में सक्षम हो ही जाते हैं। इसमें अपने दृष्टिकोण को बदलते हुए एक अलग नजरिये से स्थितियों को देखने में सक्षम होना भी शामिल है। यह जानते हुए कि जब हम जीवन द्वारा पैदा की गयी कई बाहरी स्थितियों को बदल नहीं सकते, हम उन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के तरीके पर नियंत्रण रख सकते हैं, विशेष रूप से अपने सोचने के तरीके पर।

आपकी आंतरिक प्रकृति आपका शांत मन है।

नवीनता-रचनात्मकता-उपयोगिता हेतु

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

नवीनता से आती है सृजनशीलता, रचनात्मकता का मूल्य उपयोगिता।
रचनात्मकता से आती नवीनता, रूढ़ि-संकीर्णता रहित उदारता।।

हठाग्रह-दूराग्रह रिक्त सत्यग्राहीता, उन्नत विचार व चिंतनशीलता।
कल्पनाशीलता-शोध-बोध वृत्ति, मिथ्याधारणा परे प्रगतिशीलता।।

सत्यजिज्ञासु व उत्साह-प्रवृत्ति, स्व-पर हित हेतु भावना वृत्ति।
लगनशीलता-अदीर्घसूत्रता, गुणदोष-समीक्षा सुधार-वृत्ति।।

नये-नये चिंतन से आते उक्त गुण, नये-नये कार्य से बढ़ते गुण।
नई भाषा सिखना व नये लेख लिखना, नई-नई कविताओं की रचना करना।।

अनेकांत दृष्टि से विचार करना, विभिन्न पहलुओं से समन्वय करना।
दूरदृष्टि से विचार भी विचार करना, वैश्विक दृष्टिकोण से भावना भाना।।

नई-नई पद्धति प्रयोग में लाना, भूत से सिखना भावी हेतु बढ़ना।
स्वयं को उत्साहित-प्रेरित करना, अन्य को भी उत्साहित-प्रेरित करना।।

दूसरों से भी शिक्षा ले आगे बढ़ना, दूसरों की आलोचना से भी शिक्षा लेना।
किन्तु दूसरे से हतोत्साहित न होना, निन्दा-अवहेलना से भी प्रेरित होना।।

लोकानुगतिक होते प्रायः लोग, उनकी सीमा में बंधे न रहना।
जीवित अवस्था में करते निरादर, मरने (सफल) के बाद करते सत्कार।।

उत्साही अबोध बालक सम जिज्ञासु बनना, चलते-गिरते फिर दौड़ लगाना।
वीतरागी साधु सम समता धरना, निर्भय-निर्मल भाव से साधना करना।।

सफल होने पर स्वयं को पुरस्कार देना, आत्मविश्लेषण आत्मसंबोधन करना।
स्वगुण व उपलब्धि का मूल्यांकन करना, अन्य कोई करे तो प्रेरित होना।।

सच्चे-अच्छे व उच्च भाव-व्यवहार, धैर्य साहस व दृढ़तम विचार।
अवश्य सफल होते ऐसे हो आत्मविश्वास, सफलता मिलती 'कनक' का दृढ़ विश्वास।।

सीपुर, दिनांक 05.10.2016, मध्याह्न 12.31

संदर्भ-

''इत्याद्यनेक, धर्मत्वं, बन्धमौक्षौ तयोः फलम्।
आत्मा स्वीकुरूते तत्तत्कारणेः स्वयमेव तु।।9।।''

कर्मबंध भवभ्रमण मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम से आस्रव बंध तत्त्व के रूप में होता है और सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र द्वारा संवर निर्जरा की प्रक्रिया से मोक्ष होता है। आत्मा स्वयं विभिन्न कारणों से बंध या मोक्ष की प्रक्रिया किया करता है। तथा चोक्तम्-

स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद्विमुच्यते।।

यह आत्मा स्वयं अपने राग-द्वेष-मोह आदि भावों के द्वारा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय कर्मों का बंध किया करता है और जब कर्म का उदय होता है तो आत्मा स्वयं अपने अच्छे या बुरे फल को भोगा करता है, चारों गतियों में जन्म-मरण भी यह आत्मा अपने कर्मों के अनुसार किया करता है तथा निर्बंध गुरु-द्वारा जिनवाणी सुनकर जब यह शरीर आत्मा के भेदभाव समझकर

आत्म का श्रद्धालु बनता है, संसार शरीर और विषय-भोगों से विरक्त होता हैं-यह सम्यग्दृष्टि बनकर स्वयं कर्मों से मुक्त होने के मार्ग पर चल पड़ता है। अपनी आत्मचर्या सम्यक्चारित्र को उन्नत करता हुआ संवर निर्जरा की पद्धति से शुक्लध्यान द्वारा समस्त कर्मों से छूटकर, जन्म-मरण का सदा के लिए विनाश करके मुक्त भी अपने आप होता है। यानी-यह आत्मा स्वयं कर्त्ता, भोक्ता, भ्रमणकर्त्ता और मुक्त होता है।

कर्त्ता यः कर्मणा भोक्ता, तत्फलानां स एव तु।
बहिरन्तरूपायाभ्यां, तेषां मुक्तत्वमेवहि।।20।।

जीव को संसार में घुमाने वाला, उसको सुख-दुःख देने वाला तथा संसार और कर्मों से जीव को मुक्त करने वाला कोई व्यक्ति नहीं है, यह समस्त कार्य आत्मा स्वयं करता है। यह आत्मा स्वयं अपने मिथ्यात्व, राग-द्वेष-मोह, ममतादि भावों से शरीर, परिवार, धन, मकान आदि को अपना करके कर्मबंध किया करता है तथा कर्मों के उदय आने पर उन कर्मों का फल आत्मा को स्वयं भोगना पड़ता है। आत्मा तथा कर्म, नोकर्म (शरीर) का भेद-विज्ञान हो जाने पर सम्यक्त्व, सत्-ज्ञान स्वयं होता है तथा अंतरंग-बहिरंग तपश्चर्या द्वारा कर्मों से मुक्त भी आत्मा स्वयं होता है।

शांत व अशांत मन से लाभ व अलाभ

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू मन को शांत करोऽऽऽ
शांत मन से अधिक लाभ होतेऽऽ अशांत मन से अलाभ अनेकऽऽऽ

तन से अधिक मन की शक्तिऽऽ शक्ति का तू सदुपयोग करऽऽ
शांत मन से होता शक्ति का सदुपयोगऽऽ अशांत मन से शक्ति का दुरुपयोगऽऽ
शांति से शक्ति का (होता) संवर्द्धनऽऽ (1)

शांत मन से होता सहज अनुभवऽऽ जीवन होता प्रसन्न व शांतऽऽ
उदारता सहिष्णुता एकाग्रता बढ़तीऽऽ बढ़ते धैर्य-संतोष प्रोत्साहनऽऽ
बढ़े आशावाद लचीलापनऽऽ (2)

समता बढ़ती निद्रा अच्छी आतीऽऽ जीवन (होता) तरोताजा व हलकाऽऽ

आदर सत्कार सम्मान बढ़तेऽऽ नवीन-नवीन ज्ञान उत्पन्नऽऽ
उत्तम कार्य में पुरुषार्थ महान्ऽऽ (3)

तन-मन-आत्मा होते स्वस्थ्य सबलऽऽ प्रेम-संगठन होते प्रबलऽऽ
अन्याय-अत्याचार पापाचार न होतेऽऽ फैशन-व्यसन आडम्बर कमऽऽ
वाद-विवाद-कलह द्वंद्व कमऽऽ (4)

अशांत मन से होते इससे विपरीतऽऽ भय-व्यग्रता-उतावलापनऽऽ
कुंठा-अस्थिरता व अनिद्रा होतीऽऽ चिंता-अशांति-विषमतापूर्णऽऽ
धैर्य व निर्णय क्षमता में न्यूनऽऽ (5)

सौहार्द्र-सदाचार-आत्मविश्वास न्यूनऽऽ ईर्ष्या-घृणा-आलोचना में वर्द्धमानऽऽ
तनाव-उदासीन-किंकर्त्तव्यमूढ़ऽऽ होते आलास्य-प्रमाद-एकलापनाऽऽ
अल्प भी दुःख से होता खेद खिन्नऽऽ (6)

नशीली-वस्तु प्रति आकर्षणऽऽ अन्याय-अत्याचार प्रति आकर्षणऽऽ
ईर्ष्या-द्वेष-घृणा व निन्दा-अपमानऽऽ होते वाद-विवाद-कलहऽऽ
सात्विक/(पौष्टिक) भोजन में न लगे मनऽऽ (7)

अशांत मन से न (होते) ध्यान-अध्ययनऽऽ मनन-चिंतन-स्मरणऽऽ
शोध-बोध व अनुभव न होतेऽऽ न (होते) आत्मा व परम सत्य ज्ञानऽऽ
(अस्वच्छ व)/चंचल जल में न पड़े (यथा) प्रतिबिंब समऽऽ (8)

ध्यान-अध्ययन आत्मशुद्धि हेतुऽऽ करो मन को शांत संयतऽऽ
आध्यात्म शक्ति द्वारा मनातीत बनोऽऽ जिससे बनोगे अनंतगुणीऽऽ
'कनक' करो मन को स्वाधीनऽऽ (9)

सीपुर, दिनांक 04.10.2016, रात्रि 9.22 व 3.16
(यह कविता 'मन की शक्ति के सूत्र'-लेखक-ग्यालवा दोखम्पा से भी प्रभावित)

सन्दर्भ-

ध्यान-योग्य, योग्यता एवं परिस्थिति

अभवच्चितविक्षेपः एकान्ते तत्वसंस्थितः।
अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्वं निजात्मनः।। (36)

He in whose mind no distrubances occur and who is established in the knowledge of the self-such an ascetic should engage himself diligently in the contemplation of his soul, in a lonely place.

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है-हे गुरुदेव! अभ्यास क्यों करना चाहिए? अर्थात् शिष्य की जिज्ञासा यह है कि अभ्यास का प्रयोग उपाय क्या है? बार-बार सुप्रसिद्ध स्थान, नियम आदि में प्रवृत्त होना अभ्यास है। इस संवित्ति रूप जिज्ञासात्मक शंका का समाधान आचार्यश्री शिष्य के बोध के लिए करते हैं।

संयमी-योगी को आलस्य निद्रादि को निरसन (जय) करके योग्य शून्य गृहादि में स्वात्मा का अभ्यास करना चाहिए। बाल्य मनुष्यादि रहित एकांत स्थान में तथा अंतरंग राग-द्वेषादि रहित एकांत-भाव से योगी को निजात्मा का ध्यान करना चाहिए। क्योंकि दोनों प्रकार के एकांत से रहित अवस्था में स्थित होने पर विक्षोभ उत्पन्न होता है जिससे आत्म-ध्यान नहीं हो पाता है।

समीक्षा-अनादिकाल से यह जीव स्व-स्वरूप से बर्हिमुख होकर इन्द्रियाँ एवं मन के माध्यम से स्व-शक्ति का विघटन, बिखराव, ह्रास एवं क्षय कर रहा है। इसको ही बाह्य प्रवृत्ति, कुध्यान, अपध्यान, आर्तध्यान, रौद्रध्यान, संसारवर्धिनीध्यान कहते हैं। बाह्य से निवृत्ति होकर स्व में रमण रूप प्रक्रिया को ही सुध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान, योग, लीनता, समाधि आदि से अभिहित करते हैं।

इच्छा निरोधः ध्यानः, इच्छा का सम्यक् रूप से निरोध करना ध्यान है। उमास्वामी आचार्यश्री ने मोक्षशास्त्र में कहा भी है-

'एकाग्र चिन्ता निरोधोध्यानं' चित्त को अन्य विकल्पों से हटाकर एक ही विषय में लगाने को ध्यान कहते हैं। महर्षि पतंजलि ने भी ध्यान का लक्षण कहते हुए पतंजलि योग दर्शन के प्रथम चरण में ही कहा है-

''योगश्चित्तवृत्ति निरोधः''

चित्त की वृत्तियों का जो निरोध है वह योग कहा जाता है। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है-समत्व योग उच्यते (2.48) बुद्धि की समता या समत्व को ही योग (ध्यान) कहते हैं अथवा ''योगः कर्मसु कौशलम्'' (2.50) अर्थात् शुभाशुभ से मुक्त होकर कर्म करने की कुशलता को योग कहते है।

उपरोक्त सिद्धांत से यह सिद्ध होता है कि मन (बुद्धि, चित्त) की प्रवृत्ति अन्य-

अन्य विषय से हटकर एक विषय में स्थिर भाव से केन्द्रीभूत हो जाना, लीन हो जाना, स्थिर हो जाना ही ध्यान है। अतएव ध्याता को ध्यान करने के लिए जो अनिवार्य तथा प्रथम एवं प्रधान नियम है उसका वर्णन आचार्य पूज्यपाद स्वामी समाधि तंत्र में निम्न प्रकार कहे हैं-

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते।।95।।

मनुष्य की बुद्धि में जो बात दृढ़ता से बैठ जाती है उसको उसी विषय का श्रद्धान या रूचि विश्वास हो जाता है और जहाँ रूचि पैदा हो जाती है, उसी विषय में सोते-जागते तथा पागलपन या मूर्छित दशा में भी उसका मन रमा रहता है।

आत्मदृष्टा पुरुष की बुद्धि में आत्मा समाया हुआ होता है। इस कारण सब दशा में उसका मन अपने आत्मा में ही लगा रहता है। बहिरात्मा की बुद्धि अपने शरीर की ओर लगी रहती है, अतः अपने शरीर को ही अपने सर्वस्व (आत्मा) की श्रद्धा से देखा करता है, इसी कारण सोते-जागते आदि सभी अवस्थाओं में उसका मन शरीर में ही लीन रहा करता है।

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्त्तते।
यस्मान्निवर्त्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः।।96।। (समाधि तंत्र)

मनुष्य की बुद्धि में जो बात ठीक नहीं समाती उस बात में उसको श्रद्धा रूचि नहीं होती और जिस विषय की श्रद्धा नहीं होती है उस विषय में उसका मन भी लीन नहीं होता। तद्नुसार अंतरात्मा की बुद्धि में अपनी आत्मा समायी रहती है। अतः शरीर में उसकी रूचि नहीं होती इसी कारण से वह आत्मा में लीन रहता है, शरीर में उसकी रूचि नहीं होती। इसके विपरीत बहिरात्मा की समझ में शरीर के सिवाय आत्मा और कुछ नहीं है। अतः उसकी श्रद्धा आत्मा में नहीं होती। इसी कारण उसका मन भी आत्मा में लीन नहीं होता। यह जीव अनादिकाल से संसार शरीर भोग, उपभोग इन्द्रिय विषय के राग-रंग में रचा-पचा अनुभव किया सुना है। इसलिये वह विषय अनुभूत होने के कारण स्व-स्वरूप सबसे अधिक निकटवर्ती होने पर भी मन की प्रवृत्ति स्वयंमेव सहज रूप से विषयों की ओर हो जाती है। परन्तु इससे विपरीत स्व-स्वरूप का भान अनुभव नहीं होने के कारण स्व-स्वरूप सबसे अधिक निकटवर्ती होने पर

भी मन की प्रवृत्ति स्व में सरलता से नहीं होती है। इसलिये बाह्य द्रव्यों से चित्त को हटाकर स्व में स्थिर करने के लिए स्वयं का मनन-चिंतन परिज्ञान सतत करना चाहिए। पूज्यपाद स्वामी ने समाधि तंत्र में कहा है-

तदबृयात्तत्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।।52।।

आत्मा श्रद्धालु को वह आध्यात्मिक चर्चा करनी चाहिए, वह आत्मा सम्बन्धी ही बातें अन्य विद्वानों से पूछनी चाहिए। उसी आध्यात्मिक विषय की चाह रखनी चाहिए। उसी आध्यात्मिक विषय में सदा तत्पर, तैयार या उत्सुक रहना चाहिए। जिससे अपनी आत्मा का अज्ञान भाव छोड़कर ज्ञान भाव प्राप्त हो।

गीता में कर्मयोगी नारायण श्री कृष्ण ने भी ध्यान के विषय में वर्णन करते हुए कहा है-

अविद्या, राग-द्वेष इन्द्रिय विषय में रमायमान चित्त सर्वदा चंचल एवं क्षुभित रहता है इसलिये मन को स्थिर करना शीघ्र सहज साध्य नहीं है। मन को स्थिर करने के लिए जब श्री कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं तब अर्जुन श्री कृष्ण को निम्न प्रकार अपना भाव प्रगट करते हैं-

चंच्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।34।। अध्याय 6

हे कृष्ण यह मन चंचल, हठीला बलवान और 'दृढ़' है। वायु के समान अर्थात् हवा को गठरी में बाँधने के समान इसका निग्रह करना मुझे अत्यंत दुष्कर दिखता है।

श्री कृष्ण अर्जुन की वास्तविक परिस्थिति एवं कठिनाइयों को अनुभव करके निम्न प्रकार संबोधन करते हैं-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते।।35।।
असंयतात्मना योगो दुष्प्रावृत इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतंता शक्याऽवाप्तुमुपायतः।।36।।

है महाबाहु अर्जुन! इसमें संदहे नहीं, कि मन चंचल है और उसका निग्रह करना कठिन है, परन्तु है कौन्तेय! अभ्यास और वैराग्य से वह स्वाधीन किया जा

सकता है। मेरे मत में जिसका अन्तःकरण काबू में नहीं, उसको (इस साम्यबुद्धि रूप) योग का प्राप्त होना कठिन है, किन्तु अन्तःकरण को काबू में रखकर प्रयत्न करते रहने पर, उपाय से (इस योग का) प्राप्त होना संभव है।

जैसे जल स्वभावतः तरल एवं निम्नगामी है उसी प्रकार मन भी निम्नगामी है। मन की प्रवृत्ति विषय, कषाय में, राग-द्वेष में, राग-रंग में होना सहज-सरल है। जैसे जल को घन या ऊर्ध्वगामी बनाना श्रम साध्य एवं समय साध्य है, उसी प्रकार मन को निर्मल एवं स्थिर करना श्रम साध्य एवं समय साध्य है। जब जल तरल रहता है तब जल स्वाभाविक रूप से अधोगमन करता है परन्तु जब घन तुषार रूप परिणमन करता है तब जल अधोगमन नहीं करता है। उसी प्रकार मन, ज्ञान, वैराग्य, संयम, मनन-चिंतन, अनुप्रेक्षा अभ्यास के बल से दृढ़ घनीभूत हो जाता है तब मन अधोगामी (विषय कषायों की ओर प्रवृत्ति करना) चल (अस्थिर, क्षुभित, अशांत, व्यथित) नहीं रहता है। मन को निर्मल, स्थिर, शांत बनाना विश्व का सर्वश्रेष्ठ एवं सबसे क्लिष्ट कार्य है। मन चंचल होने का कारण राग-द्वेष है एवं मन स्थिर होने का कारण राग-द्वेष की निवृत्ति है।

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनो जलम्।

स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं तत्तत्वं नेतरो जनः।।35।। (समाधि तंत्र)

जिस पुरुष का मन रूपी जल राग-द्वेष, मोह, मद, क्रोध, लोभ, माया आदि की लहरों से चंचल नहीं है वह मनुष्य अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप को अपने निर्मल मन में देख लेता है। अन्य मनुष्य उस आत्मा के स्वरूप को नहीं देख पाता।

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।

धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रयेत्ततः।।36।।

मोह मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि के क्षोभ से रहित मन आत्मा का स्वभाव है और मोह तथा राग-द्वेष से व्याकुल मन आत्मा की भ्रांति यानि भ्रम है। इसलिये राग-द्वेष-मोह से रहित शुद्ध मन बनाना चाहिए, राग-द्वेष-मोह आदि दुर्भावों से मन को मलीन नहीं करना चाहिए।

अविद्याभ्यास संस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।

तदैव ज्ञान संस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते।।37।।

मन अज्ञान के अभ्यास के संस्कारों द्वारा अपने वश में न रहकर इन्द्रियों के

विषय भोगों में फँस जाता है वही मन आत्मा और शरीर के भेद विज्ञान के संस्कारों से अपने आत्म स्वरूप में ठहर जाता है।

मैं आध्यात्मिक गुण-गुणी की प्रशंसा करूँ!

(पापी की भी निन्दा तक न करूँ!)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे! गुण-गुणी की प्रशंसा करऽऽऽ
यह ही प्रार्थना-पूजा-आराधनाऽऽऽ स्व-गुण वृद्धि होती इससेऽऽऽ...(ध्रुव)...

''वन्दे तद्गुणलब्धये'' इसे ही कहतेऽऽऽ इसी से होती भाव विशुद्धिऽऽऽ
पाप नाश होता पुण्य भी बंधताऽऽऽ स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त होताऽऽऽ
भक्ति मुक्ति प्रदायक भी होयऽऽऽ जिया...(1)...

विनय बहुमान आदर सत्कारऽऽऽ होते आध्यात्मिक गुण-गुणी केऽऽऽ
देव-शास्त्र-गुरु पञ्च-परमेष्ठीऽऽऽ नव देवता-रत्नत्रय केऽऽऽ
दश धर्म-सोलह भावनाओं केऽऽऽ जिया...(2)...

सम्यग्दृष्टि से लेकर आर्यिका तक कीऽऽऽ प्रशंसा गुणों की करणीयऽऽऽ
यथायोग्य उनके आध्यात्मिक गुणों कीऽऽऽ प्रशंसा न करणीय कुगुणों कीऽऽऽ
प्रशंसा योग्य नहीं सत्ता-संपत्तिऽऽऽ जिया...(3)...

धर्म न होता धार्मिक बिनाऽऽऽ गुण-गुणी संबंध जो होताऽऽऽ
धर्म के कारण ही धार्मिक होताऽऽऽ धर्मी की प्रशंसा ही धर्म कीऽऽऽ
(सद्वृत्तानां) गुण-गण कथा दोष वादेच मौनम्ऽऽऽ जिया...(4)...

आध्यात्मिक विनय ही तुम्हें करणीयऽऽऽ लौकिक विनय न करणीयऽऽऽ
दर्शन ज्ञान चारित्र तप उपचार विनयऽऽऽ पञ्चविध आध्यात्मिक विनयऽऽऽ
यही (यथार्थ) पूजा प्रशंसा धन्यवादऽऽऽ जिया...(5)...

सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि-डिग्री कीऽऽऽ नहीं करणीय प्रशंसा अष्टमद कीऽऽऽ
इससे युक्त मनुष्य भी अप्रशंसनीयऽऽऽ ये सभी होते लौकिक विनयऽऽऽ
इनकी प्रशंसा से बंधे पाप कर्मऽऽऽ/(इससे होता संसार परिवर्द्धन)ऽऽऽ जिया...(6)...

पशु व चाण्डाल की भी प्रशंसा शास्त्रों मेंऽऽऽ मिलती अनेक प्रकरणों मेंऽऽऽ
आत्मिक गुण बिन चक्रवर्ती भीऽऽऽ नहीं है प्रशंसनीय धर्म मेंऽऽऽ
'कनक' करे प्रशंसा आत्म गुणों कीऽऽऽ जिया...(7)...

मैत्री प्रमोद व कारुण्य माध्यस्थऽऽऽ भाव रखो यथायोग्य जीवों मेंऽऽऽ
किसी के प्रति भी पाप भाव-व्यवहारऽऽऽ नवकोटि से न करणीयऽऽऽ
स्व-पर-विश्व हित भावना करऽऽऽ जिया...(8)...

अन्य के अविद्यमान दोष कथन सेऽऽऽ विद्यमान गुण के हनन सेऽऽऽ
अविद्यमान स्व-गुण वर्णन सेऽऽऽ देव-शास्त्र-गुरु की निन्दा सेऽऽऽ
घातिकर्म-नीच गोत्र बंधतेऽऽऽ/(मिले संसार में भयंकर दुःख)ऽऽऽ जिया...(9)...

गुणी की प्रशंसा से स्व-गुणों में वृद्धिऽऽऽ प्रशंसनीय में होती उत्साह वृद्धिऽऽऽ
सौहार्द्र-संगठन-सहयोग में वृद्धिऽऽऽ प्रभावित हो अन्य भी करे गुण वृद्धिऽऽऽ
निन्दा से उक्त गुणों की हानिऽऽऽ जिया...(10)...

सीपुर, दिनांक 06.10.2016, रात्रि 2.45

संदर्भ-

इत्थं श्रुतसागरमहामुनिमुखारविन्दाद् विनिर्गतं धर्मं श्रुत्वा सप्तव्यसन निवृतिं कृत्वा दर्शन पूर्वकं श्रावकव्रतं गृहीत्वा च श्रावको जातः स उमयः। अपरमप्यज्ञातफलाभक्षणव्रतं तेन गृहीतम्। गुणिनां प्रसङ्गेन गुणहीना अपि गुणिनो भवन्ति।

ततः सन्मार्गस्थं भ्रातरमुमयं ज्ञात्वा जिनदत्तया महता गौरवेण स्वगृहमानीतो दानेन संतोषितश्च लोकमध्ये प्रतिष्ठापितः।

इस प्रकार श्रुतसागर महामुनि के मुख कमल से विनिर्गत धर्म को सुनकर, सप्त व्यसन का त्याग कर तथा सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावक के व्रत ग्रहण कर वह उमय श्रावक हो गया। इसके अतिरिक्त उसने अज्ञातफल के न खाने का व्रत भी ले लिया। ठीक ही है गुणीजनों के संग से गुणहीन मनुष्य भी गुणी हो जाते हैं।

तदनन्तर भाई उमय को सन्मार्ग में स्थित जानकर जिनदत्ता उसे बड़े सम्मान से अपने घर ले गयी तथा दान के द्वारा उसने उसे संतुष्ट किया और लोक में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

यान्तिन्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम्।

अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरऽपि विमुञ्चति।। (449)

न्याय मार्ग में प्रवृत्त मनुष्य की तिर्यञ्च भी सहायता करते है और कुमार्ग में चलने वाले को सगा भाई भी छोड़ देता है।

उत्तमैः सह सांगत्यं पण्डितैः सह संकथाम्।

अलुब्धैः सह मित्रत्वं कुर्वाणो नावसीदति।। (450)

उत्तम मनुष्यों के साथ संगति, विद्वानों के साथ वार्तालाप और अलोभी मनुष्यों के साथ मित्रता को करने वाला कभी दुःखी नहीं होता है।

पतितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः।

प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः।। (451)

गेंद हाथ के आघातों से नीचे गिरकर भी ऊपर की ओर उछलती है। ठीक ही है क्योंकि सत्पुरुषों की विपत्तियाँ प्रायः अस्थायी होती हैं।

एकदोज्जयिनी नगरात् केचन सार्थवाहाः कौशाम्बीं समागताः। तै सन्मार्गस्थमुमयं दृष्ट्वा प्रशंसितः सः। त्वं धन्योऽसि, त्वमुत्तमसङ्गे उत्तमो जातोऽसि। इत्येवमनेकधा स्तुतः।

एक समय, उज्जयिनी नगरी से कुछ बनजारे सेठ कौशाम्बी नगरी आये। उन्होंने उमय को सन्मार्ग में स्थित देख उसकी खूब प्रशंसा की। तुम धन्य हो, तुम उत्तम मनुष्यों की संगति से उत्तम हो गये हो...इस तरह अनेक प्रकार से उसकी स्तुति की।

हीयते हि मतिस्तात हीनैः सम समागमात्।

समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्।। (452)

हे तात! हीन मनुष्यों की संगति से बुद्धि हीन हो जाती है, समान मनुष्यों की संगति से समता की प्राप्ति होती है और विशिष्ट मनुष्यों की संगति से विशिष्ट हो जाती है।

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते।

मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते।

स्वातौ सागरशुक्ति-संपुटगतं मुक्ताफलं जायते।

प्रायेणाधम-मध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतो देहिनाम्।। (453)

संतप्त लोहे पर स्थित पानी का नाम भी सुनायी नहीं देता। वही पानी कमलिनी के पत्र पर स्थित होकर मोती के समान सुशोभित होता है और स्वाति नक्षत्र में समुद्र की सीप में जाकर मोती हो जाता है। ठीक ही है क्योंकि मनुष्य के अधम, मध्यम और उत्तम गुण प्रायः संसर्ग से होते हैं।

यथा चन्द्रं विना रात्रिः कमलेन सरोवरम्।
तथा न शोभते जीवो विना धर्मेण सर्वदा।। (454)

जिस प्रकार चन्द्रमा के बिना रात्रि और कमल के बिना सरोवर सुशोभित नहीं होता उसी प्रकार धर्म के बिना सदा जीव सुशोभित नहीं होता।

तदनन्तर बहुत-सा बिक्री का सामान लेकर उमय उन बनजारों के साथ अपने नगर की ओर चला। किसी अन्य समय जब नगर अत्यंत निकट आ गया तब वह माता-पिता के दर्शन की तीव्र उत्कंठा से कुछ लोगों के साथ आगे निकल गया। रात्रि में प्रमादवश वह मार्ग छोड़कर बड़ी भारी अटवी में जा पहुँचा। प्रातःकाल सूर्योदय हुआ। तदनन्तर अटवी में घूमते हुए, क्षुधा आदि से पीड़ित मित्रों ने रूप, रस, गंध, वर्ण और माधुर्य से श्रेष्ठ, मृत्यु के कारण भूत किंपाक विषवृक्ष के फल देखकर खाये। पश्चात् उन्होंने वे फल उमय को दिये। उमय ने कहा-ये फल किस नाम के हैं? मित्रों ने कहा कि नाम से क्या प्रयोजन है? इस समय हम लोगों को संतुष्ट करने के लिए ये फल अच्छे दिखाई देते हैं। इसलिये कडुवे, नीरस, दुर्गंध-युक्त तथा स्वाद रहित अन्य फलों को छोड़कर तथा इन्हें खाकर अपने आपको संतुष्ट करो। उमय ने कहा-अज्ञात फलों के भक्षण के विषय में मेरा नियम है अर्थात् मैं अनजाने फल नहीं खाता हूँ। इसलिये मैं इन्हें नहीं खाऊँगा। इतना कहकर उसने वे फल नहीं खाये। पश्चात् कुछ समय के भीतर वे सब मित्र मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके शोक से उमय दुःखी होकर कहता है-अहो, ऐसे फल के बीच में कालकूट विष है, यह कौन जानता है?

तदनन्तर उमय के व्रत संबंधी निश्चय की परीक्षा के लिए सुंदर रूप रख वनदेवता ने आकर कहा-हे सत्पुरुष! इस कल्पवृक्ष के फल क्यों नहीं खाये? तुम्हारे मित्रों ने जो फल खाये हैं वे विषवृक्ष के अन्य फल हैं। यह कल्पवृक्ष है, इस वृक्ष के फल पुण्य के बिना प्राप्त नहीं होते। इस वृक्ष के फलों को जो खाता है वह सर्व रोगों से रहित होता है तथा कभी मरता नहीं है, दुःख नहीं देखता है, ज्ञान के द्वारा चराचर सहित लोक को जानता है। मैं पहले बहुत वृद्धा थी। इन्द्र ने इसके फलों की रक्षा के

लिए मुझे यहाँ रखा है। इसके फल खाने से मैं नव यौवनवती हो गयी हूँ।

यह वचन सुनकर उमय ने कहा कि हे बहिन! अज्ञात फल के भक्षण के विषय में मेरा नियम है अर्थात् मैं अज्ञात फल नहीं खाता हूँ। इसलिये मुझे इस फल का नाम बताओ। वन देवता कहती है कि मैं नाम नहीं जानती हूँ। उमय ने कहा-तो फिर इन अतिशयों से क्या प्रयोजन है? किन्तु जो कुछ ललाट में लिखा है वही होता है अन्य नहीं। बहुत कहने से क्या लाभ है?

उमय के इस धैर्य को देखकर वन देवता ने कहा-हे पथिक! तुम्हारे ऊपर मैं संतुष्ट हूँ। वर माँगो-उसने कहा-यदि संतुष्ट हो तो हमारे साथियों को उठा दो और उज्जयिनी का मार्ग बतला दो। वन देवता ने कहा-ऐसा हो।

उद्यमः साहसं धैर्यं बलं बुद्धिः पराक्रमः।
षडेते यस्य विद्यन्ते तस्य देवोऽपि शक्यते।। (455)

उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम ये छह जिसके पास हैं देव भी उसके वश रहते हैं।

उत्साह-संपन्नमदीर्ध सूत्रं, क्रिया-विधिज्ञं व्यसनेष्व सक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ सौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं वाञ्छति वासहेतोः।। (456)

जो उत्साह से सहित है, शीघ्रता से कार्य करता है, कार्य करने की विधि को जानता है, व्यसनों में अनासक्त है, शूरवीर है, कृतज्ञ है और दृढ़ मित्रता वाला है। लक्ष्मी, निवास के हेतु उस पुरुष के समीप स्वयं पहुँचना चाहती है।

गुणाः कुर्वन्ति दूतत्वं दूरेऽपिवसतां सताम्।
केतकी गन्ध माघ्राय स्वयं गच्छन्ति षट्पदाः।। (457)

गुण, दूर भी रहने वाले मनुष्यों को दूतपन करते हैं क्योंकि केतकी की गंध को सूँघकर भ्रमर स्वयं ही उसके पास पहुँच जाते हैं।

ततो देवता प्रभावात्सर्वेऽप्युत्थिताः तदनन्तरं तैर्भणितम्-भो उमय! तव प्रसादेन वयं जीविताः। तव व्रत माहात्म्यमद्य दृष्टमस्माभिः। तव किमप्यगम्यं नास्ति। ततस्तया देवतया नगर मार्गोऽपि दर्शितः। क्रमेण तैः सहायैः सह स्वगृहमागत उमयः। सच्चरित्रवन्तमुमयं दृष्ट्वा वृत्तवृत्तान्तं च श्रुत्वा पिता मातृ राजमन्त्रि स्वजन परिजनादिभिः प्रशंसितः। अहो, धन्योऽयमुमयो महत्संयोगेन पूज्यो जातः।

तदनन्तर देवता के प्रभाव से सब उठकर खड़े हो गये। पश्चात् उन सब साथियों ने कहा कि हे उमय! तुम्हारे प्रसाद से हम सब जीवित हुए। तुम्हारे व्रत का माहात्म्य आज हम लोगों ने देख लिया। तुम्हारे लिए कोई भी कार्य अगम नहीं है। तदनन्तर उस वन देवता ने नगर का मार्ग भी दिखा दिया जिससे क्रमपूर्वक अपने साथियों के साथ उमय अपने घर आ गया।

उत्तम आचरण से युक्त उमय को देखकर तथा उसके पूर्व वृत्तांत को सुनकर पिता, माता, राजा, मंत्री, स्वजन और परिजन आदि ने उसकी खूब प्रशंसा की। अहो! यह उमय धन्य है, महापुरुषों के संयोग से पूज्य हो गया है।

उत्तमैः सह संगत्या पुमानाप्नोति गौरवम्।
पुष्पैश्च सहितस्तन्तुरुत्तमाङ्गेन धार्यते।। (458)

उत्तम पुरुषों के साथ संगति करने से मनुष्य गौरव को प्राप्त होता है क्योंकि फूलों से सहित तन्तु भी मस्तक से धारण किया जाता है।

द्वितीय दिने नगरदेवतयागत्य सर्वपुर साक्षिकं रत्नमण्डपं विकृत्य तन्मध्ये सिंहासनं च तस्योपरि उमयं विनिवेश्याभिषेकं विधाय पूजा कृता। पञ्चाश्चर्यं च कृतम्। एतत्सर्वं दृष्ट्वा राज्ञा भणितम्-जिनधर्म एव सर्वापदं हरति नान्यः।

दूसरे दिन नगर देवता ने आकर सब नगरवासियों की साक्षीपूर्वक विक्रिया से एक रत्नमण्डप और उसके बीच सिंहासन बनाया तथा उसके ऊपर उमय को बैठाकर अभिषेकपूर्वक उसकी पूजा की-सम्मान किया, पञ्चाश्चर्य किये। यह सब देख राजा ने कहा कि धर्म ही सब आपत्तियों को हरता है अन्य नहीं।

धर्माः शर्म परत्र चेह न नृणां धर्मोऽन्धकारे रविः।
सर्वापत्प्रशमक्षयः सुमनसां धर्मोनिधीनां निधिः।।
धर्मो बन्धुर बान्धवे पृथुपथे धर्मः सुहृन्निश्चलः।
संसारोरूमरूस्थले सुरतरूर्नास्त्येव धर्मात्परः।। (459)

धर्म, इहलोक तथा परलोक में मनुष्य के लिए सुख स्वरूप है। धर्म अंधकार में सूर्य है। धर्म, पंडितों की सब आपत्तियों का शमन करने में समर्थ है, धर्म, निधियों का खजाना है। धर्म, बंधु रहित का बंधु है। धर्म, लंबे मार्ग में साथ चलने वाला मित्र है और धर्म, संसार रूपी विशाल मरूस्थल में कल्पवृक्ष है, वास्तव में धर्म से बढ़कर अन्य कुछ नहीं है।

तदनन्तर अपने-अपने पुत्रों को अपने-अपने पद पर स्थापित कर नरपाल राजा, मदनदेव मंत्री, राजसेठ समुद्रदत्त, उमय पुत्र तथा अन्य बहुत लोगों ने सहस्त्रकीर्ति मुनिराज के समीप तप ग्रहण कर लिया। कितने ही श्रावक और कितने ही भद्रपरिणामी हो गये।

रानी मनोवेगा, मंत्र की स्त्री सोमा, राजसेठ की पत्नी सागरदत्ता तथा अन्य बहुत स्त्रियों ने अनंतमती आर्यिका के समीप तप ग्रहण किया। कुछ स्त्रियाँ श्रावक हुईं।

पश्चात् कनकलता ने कहा कि हे स्वामिन्! यह सब मैंने प्रत्यक्ष देखा है। तदनन्तर मुझे अत्यंत दृढ़ सम्यक्त्व हुआ है और धर्म में मेरी बुद्धि सुदृढ़ हुई है। अर्हद्दास ने कहा कि हे प्रिये! तुमने जो देखा है उन सबकी मैं श्रद्धा करता हूँ, इच्छा करता हूँ और रुचि करता हूँ। अन्य स्त्रियों ने भी ऐसा ही कहा। सेठ ने कुंदलता के प्रति कहा कि हे कुंदलते! तुम भी निश्चल चित्त होकर नृत्यादिक करो। यह सुनकर कुंदलता ने कहा कि यह सब असत्य है।

वह सुनकर राजा, मंत्री और चोर ने अपने मन में विचार किया कि अहो! कनकलता ने जिसे प्रत्यक्ष देखा है उसे यह पापिनी कुंदलता असत्य बतलाती है। प्रभात समय इसे गधे पर बैठाकर इसका निग्रह करेंगे-इसे दण्ड देवेंगे। चोर ने पुनः अपने मन में विचार किया कि जो अविद्यमान दोष का निरूपण करता है वह नीच गति का पात्र होता है।

न सतोऽन्यगुणान् हिंस्यान्नासतः स्वस्य वर्णयेत्।
तथा कुर्वन् प्रजायेत नीचगोत्रान्वितः पुमान्।। (460)

दूसरे के विद्यमान गुणों को नष्ट नहीं करना चाहिए और न अपने अवधिमान गुणों का वर्णन करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने वाला मनुष्य नीच गोत्र से युक्त होता है।

इंसान में बड़प्पन आये तो कैसे?

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

छोटा से बड़ा हुआ नहीं कुछ ज्ञान, शब्दों के भी ज्ञान नहीं कैसे हो अर्थज्ञान?
सामान्य ज्ञान नहीं कैसे हो सत्यज्ञान? लौकिक ज्ञान नहीं कैसे हो आत्मज्ञान? (1)
उठना-बैठना का नहीं सही ज्ञान, खान-पान वेश-भूषा का नहीं सही ज्ञान।

रोजमरी कामों का नहीं सही ज्ञान, नीति-नियम-सदाचार का कैसे हो ज्ञान? (2)
पढ़ाई के उद्देश्य का नहीं सही ज्ञान, आधुनिकता की तुम्हें नहीं पहचान।
बड़प्पन का तुम्हें नहीं ज्ञान-भान, फैशन-व्यसन-दिखावा में संत्रस्त जीवन।। (3)
रीति-रिवाज-पूजा-(पाठ) का नहीं सही ज्ञान, पर्व-महोत्सव-विधान का नहीं सही ज्ञान।
तीर्थ यात्रा महापुरुषों का न जानते गुण, पुण्य-पाप धर्म-अधर्म (का) कैसे हो ज्ञान? (4)
तन-मन-आत्मा का नहीं सही ज्ञान, कर्मबंध संसार की नहीं पहचान।
मोक्षमार्ग मोक्ष का नहीं सही ज्ञान, धर्म से क्या लाभ होता तुम्हें क्या ज्ञान? (5)
बीज नहीं वृक्ष कहाँ कैसे मिले फल? नींव नहीं दिबाल कहाँ कैसे बने महल?
प्राथमिक शब्द से आत्मा (धर्म) तक कर ज्ञान, 'कनक' माने ऐसे इंसान ही महान्।। (6)
वट वृक्ष बड़ा होने से न होता महान्, उम्र-पैसा-पढ़ाई से न होते महान्।
ज्ञान-गुण-सदाचार से बनते महान्, यह ही बड़प्पन व मानव बनने के चिह्न।। (7)
केवल काम चलाऊँ शब्द ज्ञान से, दिखावा-आडम्बर रूपी शिक्षा धर्म से।
फैशन-व्यसन रूपी आधुनिकता से, नहीं बनता इंसान बड़ा धन नाम से।। (8)

सीपुर, दिनांक 04.10.2016, मध्याह्न 12.30 व 2.34

भावों के रहस्य/कर्मसिद्धांत/आध्यात्मिक रहस्य संबंधी कविता

भाव (भावना) तेरी अनंत शक्ति!

(चाल : गंगा तेरा पानी अमृत....., भातुकली (मराठी)....., सायोनारा.....)

भाव/(भावना) तेरी अनंत शक्ति...वचने कहि न जाए...
तुम सर्वज्ञ ज्ञानगम्य हो...अल्पज्ञ न (पूर्ण) जान पाय...भाव...(ध्रुव)...

अशुभ-शुभ-शुद्ध रूप तेरे...संक्षिप्त वर्णन होय...
संख्यात-असंख्यात-अनंत भेद...तेरे विस्तार से होय...

क्रोध मान माया लोभ मोह...ईर्ष्या घृणा काम असूया...
तेरे <u>अशुभ</u> भाव के प्रभेद...इसके भी अनेक प्रभेद...भाव...(1)...

इनके ही उपज है पञ्च पाप...सप्त व्यसन-अष्टमद...
अन्याय-अत्याचार-दुराचार...शोषण मिलावट आतंकवाद...

इनसे ही उपजे प्रकृति शोषण...जिससे उपजे प्रदूषण...

अतिवृष्टि अनावृष्टि भूकंप सुनामी...नाना रोग-अकाल मरण...भाव...(2)...

इसी के पाप से संसार भ्रमण...जन्म-मरण-दुःख दैन्य...

तेरा अशुभ रूप ही संसार भ्रमण...नरक-तिर्यंच तेरे कारक...

अशुभ भाव से लोकाकाश से...आकर्षित (हो आते) अनंत कर्माणु...

आत्म प्रदेशों में बंधे पाप रूप में...जिससे मिले उक्त दुःख दैन्य...भाव...(3)...

अशुभ से परे तेरा शुभ रूप...आत्मविश्वास ज्ञान आचरण...

पञ्चाणुव्रत-पञ्चमहाव्रत रूप...दान दया सेवा परोपकारमय...

ध्यान-अध्ययन-तप-त्यागमय...समता-शांति-समन्वय...

दशधर्म-सोलह कारण भावना...मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ...भाव...(4)...

इसी से ही उपजे सातिशय पुण्य...जिससे मिले संसार सुख...

उत्तम मनुष्य-देवगति मिले...परंपरा से शुद्ध भाव के कारण...

शुभ भाव से लोकाकाश से...आकर्षित (हो आते) अनंत कर्माणु...

आत्मप्रदेशों में बंधे पुण्य रूप में...जिससे मिले संसार में सुख...भाव...(5)...

तेरा शुद्ध स्वरूप आत्म स्वभाव...उपरोक्त दोनों भाव परे...

परम समता-शुचिता सहित...शुद्ध-बुद्ध-आनंद पूरे...

यही अवस्था परमात्मावस्था...अनंत ज्ञान-दर्शन-सुखमय...

अक्षय-अव्यय-अविनाशीमय...'कनक' की निज शुद्धावस्था...भाव...(6)...

शुद्ध भाव से पुण्य-पाप नशते...न बंधते कर्म परमाणु...

जिससे शुद्ध भाव (कभी) न होता अशुद्ध...न होते जन्म-जरा-मृत्यु...

ऐसी तेरी महिमा अनुपम...सामान्य जन जान न पाते...

तेरे संपूर्ण परिज्ञान केवल...सर्वज्ञदेव ही स्वज्ञान से जानते...भाव...(7)...

सीपुर, दिनांक 06.10.2016, रात्रि 9.10 व 10.58

संदर्भ-

सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीव।
सादं सुहाउणामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च।। (38) (द्रव्य सं.)

शुभाशुभभाव युक्ताः पुण्यं पापं भवंति खलु जीवाः।

सातं शुभायुःनाम गोत्रं पुण्यं पराणि पापं च।।

The Jivas consist of Punya and Papa surely having auspicious and inauspicious Bhavas (respectively). Punya is Satavedaniya, auspisious life, name and class, While Papa is (exactly) the opposite (of these).

शुभ तथा अशुभ परिणामों से युक्त जीव पुण्य और पाप रूप होते हैं। सातावेदनी, शुभ आयु, शुभ नाम तथा उच्च गोत्र नामक कर्मों की जो प्रकृतियाँ हैं, वे तो पुण्य प्रकृतियाँ हैं और शेष सब पाप प्रकृतियाँ हैं।

इस गाथा में आचार्यश्री ने आस्रव एवं बंध के उत्तर भेद स्वरूप पुण्य-पाप का स्वरूप एवं उसके भेद-प्रभेद का कथन किया है। 'सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पांवहवति खलु जीवा' अर्थात् शुभ एवं अशुभ भावों से युक्त होकर जीव निश्चय से पुण्य-पाप रूप में परिणमन करता है यह प्रतिपादन करके आचार्यश्री ने भाव पुण्य एवं भाव पाप का प्रतिपादन किया है। अर्थात् जो शुभोपयोग से युक्त जीव है वह पुण्य जीव है और जो अशुभोपयोग से युक्त जीव है वह पाप जीव है। शुभोपयोग का आरंभ वस्तुतः सम्यग्दर्शन होने के बाद अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान में होता है। मिथ्यात्व गुणस्थान में शुभोपयोग नहीं हो सकता है क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना शुभोपयोग संभव नहीं है। गोम्मट्टसार में कहा भी है-

जीवा पुण्णा हु सम्मगुणसहिदा।

वदसहिदा वि य पावा, तव्विरीया हवंति त्ति।। (622)

जीव के दो भेद हैं-एक पुण्य और दूसरा पाप। जो सम्यक्त्व गुण से या व्रत से युक्त है उनको पुण्य जीव कहते हैं और इससे जो विपरीत हैं उसको पाप कहते हैं।

'मिच्छाइट्ठी पावा' - मिथ्यादृष्टि पाप जीव है।

इससे सिद्ध होता है कि वैभवशाली राजा, महाराजा, देव भी मिथ्यात्व से सहित है तो पापी जीव है परंतु सम्यग्दर्शन से सहित पशु, नारकी, गरीब मनुष्य भी पुण्यात्मा जीव है। वस्तुतः भाव पुण्य ही पुण्य है और भाव पुण्य के कारण जो कर्म परमाणु द्रव्य रूप में परिणमन करता है वह द्रव्य पुण्य है। ऐसे भाव पुण्य करने के लिए हमारे पूर्वाचार्य भी उपदेश करते हैं एवं प्रेरित करते हैं।

उद्गम मिथ्यात्वविषं भावय दृष्टिं च कुरु परां भक्तिम्।

भावनमस्काररतो ज्ञाने युक्तो भव सदापि।। (1) वृहद्द्रव्य संग्रहः पृ. 124

मिथ्यात्व रूपी विष का वमन कर दो, सम्यग्दर्शन की भावना करो, उत्कृष्ट भक्ति को करो और भाव नमस्कार में तत्पर होकर सदा ज्ञान में लगे रहो।

पंचमहाव्रतरक्षां कोपचतुष्कस्य निग्रहं परमम्।

दुर्दान्तेन्द्रियविजयं तपः सिद्धिविधौ कुरूद्योगम्।। (2)

पाँच महाव्रतों की रक्षा करो, क्रोध आदि चार कषायों का पूर्ण रूप निग्रह करो, दुर्दांत प्रबल इन्द्रिय रूप शत्रुओं पर विजय करो तथा बाह्य और अभ्यंतर भेद से दो प्रकार का जो तप है उसको सिद्ध करने में उद्योग करो। इस प्रकार दोनों आर्याच्छंदों से कहे हुए लक्षण सहित शुभ उपयोग रूप भाव परिणाम से तथा उसके विपरीत अशुभ उपयोग रूप परिणाम से युक्त परिणत जो जीव है वे पुण्य-पाप को धारण करते हैं अथवा स्वयं पुण्य पाप रूप हो जाते हैं

तत्त्वार्थ सूत्र में कहा भी है-

शुभः पुण्यास्याशुभः पापस्य। (3)

Asrva of 2 kinds : शुभ or good which is the inlet of virtue or meritorious karms अशुभ of bad which is the inlet of vice or demeritorious karmas.

शुभोपयोग पुण्य का और अशुभयोग पाप का आस्रव है।

शुभयोग पुण्य और अशुभ योग पापस्रव का कारण है। हिंसा, असत्य भाषण, वध आदि की चिन्ता रूप अपध्यान अशुभ योग है। हिंसा, दूसरे की बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण चोरी, मैथुन-प्रयोग आदि अशुभ काययोग है। असत्य भाषण, कठोर मर्मभेदी वचन बोलना आदि अशुभ वचन योग है। हिंसक परिणाम, ईर्ष्या, असूया आदि रूप मानसिक परिणाम अशुभ मनोयोग है।

अशुभ योग से भिन्न अनंत विषय विकल्प वाला शुभ योग है। जैसे-अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य पालन आदि शुभ काययोग है। अर्हंत भक्ति तप की रुचि, श्रुत का विनय आदि विचार शुभ मनोयोग है। सत्य, हित-मित वचन बोलना शुभ वाग्योग है।

शुभ परिणामपूर्वक होने वाला योग शुभयोग है और अशुभ परिणामों से होने वाला योग अशुभ योग कहलाता है। 'पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्। कर्मणः स्वतंत्र्य विवक्षायां पुनात्यात्मानं प्रीणयतीति पुण्यम्।'

पारतन्त्र्यविवक्षायां करणत्वोपपत्तेः पूयतेऽनेनेति।
वा पुण्यम् तत्सद्वैद्यादि। तत्त्वार्थवार्तिके।।

जो आत्मा को पवित्र करे या जिससे आत्मा पवित्र किया जाता है, वह पुण्य कहलाता है। अथवा जिसके द्वारा आत्मा सुखसाता अनुभव करे, वह सातावेदनीय आदि कर्म पुण्य है। स्वतंत्र विवक्षा में जो आत्मा को पवित्र करता है, प्रसन्न करता है वह पुण्य है एवं कर्तृवाच्य से निष्पन्न पुण्य शब्द है। परातन्त्र्य विवक्षा में कारण साधन से पुण्य शब्द निष्पन्न होता है जैसे जिसके द्वारा आत्मा पवित्र एवं प्रसन्न किया जाता है वह पुण्य है।

पुण्य का प्रतिद्वंद्वी (विपरीत) पाप है। जो आत्मा को शुभ से रक्षा करे अर्थात् आत्मा में शुभ परिणाम न होने दे वह पाप कहलाता है, वह असातावेदनीय आदि पापकर्म है।

प्रश्न–जैसे सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी दोनों ही का अविशेषता से तुल्य (समान) फल है प्राणी को परतंत्र करना, वैसे ही पुण्य-पाप दोनों ही आत्मा को परतंत्र करने में निमित्त कारण है। इन पुण्य और पाप में कोई भेद नहीं है, यह पुण्य (शुभ) है, यह अशुभ है, पाप है, यह तो केवल संकल्प मात्र भेद है।

उत्तर–पुण्य-पाप को सर्वथा एक रूप कहना उपयुक्त नहीं है क्योंकि सोने या लोहे की बेड़ी की तरह दोनों ही आत्मा के परतंत्रता में कारण है तथापि इष्ट फल और अनिष्ट फल के निमित्त से पुण्य और पाप में भेद है। जो इष्ट गति, जाति, शरीर, इन्द्रिय विषय आदि का निवर्तक है, वह पुण्य है तथा जो अनिष्ट गति जाति, शरीर, इन्द्रियों के विषय आदि का कारण है वह पाप है। इस प्रकार पुण्य कर्म और पाप कर्म में भेद है। इनमें शुभ योग पुण्यास्त्रव का कारण है और अशुभ योग पापास्त्रव का।

शंका–सम्यग्दृष्टि जीव के तो पुण्य तथा पाप ये दोनों ही हेय (त्याज्य) है फिर वह पुण्य संपादन कैसे करता है?

समाधान–सम्यग्दृष्टि जीव भी निज शुद्ध आत्मा को ही भाता है। परन्तु जब चारित्र मोह के उदय से उस निज शुद्ध आत्मा की भावना में असमर्थ होता है, तब दोष रहित परमात्म स्वरूप जो अर्हंत सिद्ध हैं तथा उनके आराधक जो आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं उनकी परमात्मा रूप पद की प्राप्ति के निमित्त और विषय तथा कषायों को दूर करने के लिए दान, पूजा आदि से अथवा गुणों की स्तुति आदि से परम

भक्ति को करता है और भोगों की वांछा आदि निदानों से रहित जो परिणाम हैं उससे कुटुंबियों के पलाल के समान निरिच्छकपने से विशिष्ट पुण्य का आस्रव करता है, अर्थात् जैसे किसान जब धान की खेती करता है तब उसका मुख्य उद्देश्य चावल उत्पन्न करने का रहता है और धान का जो पलाल (घास) उसमें उसकी वांछा नहीं रहती है तथापि उसको बहुत-सा पलाल मिल ही जाता है। इसी प्रकार मोक्ष को चाहने वाले जीवों की वांछा बिना भी भक्ति करने से पुण्य का आस्रव होता है और उस पुण्य से स्वर्ग में इन्द्र, लोकांतिक देव आदि की विभूति को प्राप्त होकर स्वर्ग संबंधी जो विमान तथा देव-देवियों का परिवार है, उसको जीर्ण तृण के समान गिनता हुआ पंच महाविदेहों में जाकर देखता है। क्या देखता है? ऐसा प्रश्न करो तो उत्तर यह है कि, वह यह समवसरण है, ये वही श्री वीतराग सर्वज्ञ भगवान् हैं, ये वे ही भेद तथा अभेद रूप रत्नत्रय की आराधना करने वाले गणधर देव आदि हैं, जो कि पहले सुने जाते थे, वे आज प्रत्यक्ष में देखे ऐसा मानकर अधिकता से धर्म में दृढ़ बुद्धि को करके चतुर्थ गुणस्थान के योग्य जो अपनी अविरत अवस्था है (भाव है) उनको नहीं छोड़ता हुआ भोगों का सेवन होने पर भी धर्मध्यान से देव आयु के काल को पूर्णकर स्वर्ग से आकर तीर्थंकर आदि पद को प्राप्त होता है और तीर्थंकर आदि पद को प्राप्त होने पर भी पूर्वजन्म में भावित की हुई जो विशिष्ट भेदज्ञान की वासना है उसके बल से मोह को नहीं करता है और मोह रहित होने से जिनेन्द्र की दीक्षा को धारण करता पुण्य तथा पाप से रहित जो निज परमात्मा का ध्यान है उसके द्वारा मोक्ष को जाता है और जो मिथ्यादृष्टि है वह तो तीव्र निदान बंध के पुण्य से चक्रवर्ती, नारायण तथा रावण आदि प्रतिनारायणों के समान भोगों को प्राप्त होकर नरक को जाता है।

कुंदकुंद देव ने कहा भी है-

जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहोअसुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणाम सब्भावो।। (19) (प्र.सा. पृ.सं. 19)

जब यह आत्मा शुभ या अशुभ राग भाव से परिणत होता है, तब जपा कुसुम या तमाल पुष्प के लाल या काले रंग रूप परिणत स्फटिक की भाँति परिणाम स्वभाव वाला होता हुआ स्वयं शुभ या अशुभ होता है और जब यह शुद्ध अराग (वीतराग) भाव से परिणत होता है, शुद्ध होता है तब शुद्ध अराग वीतराग स्फटिक की भाँति परिणाम स्वभाव शुद्ध होता है उस समय आत्मा स्वयं ही शुद्ध होता है।

इस प्रकार जीव के शुभत्व, अशुभत्व और शुद्धत्व सिद्ध होते हैं। तात्पर्य यह है कि वह अपरिणमन स्वभाव कूटस्थ नहीं है।

देवदजदिगुरुपूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।

उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा।। (69) (पृ. 158)

देव, यति और गुरु की पूजा में तथा दान में तथा सुशील में और उपवासादिकों में लीन आत्मा शुभोपयोगात्मक है।

उवओगो जदि हि सुहो पुण्णं जीवस्स संचय जादि।

असुहो वा तध पावं तेसिमभावे ण चयमत्थि।। (156) (पृ. 352)

उपयोग यदि शुभ हो तो जीव पुण्य संचय को प्राप्त होता है और यदि अशुभ हो तो पाप संचय होता है। उन दोनों के अभाव में संचय नहीं होता।

जो जाणदि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणगारे।

जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहोतस्स।। (157)

जो अर्हन्तों, सिद्धों तथा अनगारों को जानता है और श्रद्धा करता है, और जीवों के प्रति अनुकम्पा युक्त है, उसका वह उपयोग शुभ है।

कुन्दकुन्द स्वामी के समयसार एवं प्रवचन सार के टीकाकार आचार्य अमृतचंद्र ने तत्त्वार्थसार में पुण्यास्राव का कारण बताते हुए कहा है-

दया दानं तपः शीलं सत्यं शौचं दमः क्षमा।

वैयावृत्यं विनीतिश्च जिनपूजार्जवं तथा।। (25)

सरागसंयमश्चैव संयमासंयमस्तथा।

भूतव्रत्यनुकम्पा च सद्वेद्यास्त्रवहेतवः।। (26) तत्त्वार्थसार

दया, दान, तप, शील, सत्य, शौच, इन्द्रिय दमन, क्षमा, वैयावृत्य, विनय, जिन पूजा, सरलता, सरागसंयम, संयमा-संयम, भूतानुकम्पा और व्रत्यनुकम्पा ये सातावेदनीय आस्रव के हेतु हैं।

पापास्त्रव के कारणभूत अशुभ योग का स्वरूप कुंदकुंद ने प्रवचनसार में निम्न प्रकार से किया है-

विसयकसाओगाढो दुस्सुदिदुच्चितदुट्ठगोट्ठिदो।

उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो।। (158)

जिसका उपयोग विषय कषाय में अवगाढ़ (मग्न) है, कुश्रुति, कुविचार और

कुसंगति में लगा हुआ है, कषायों की तीव्रता में अथवा पापों में उद्यत है तथा उन्मार्ग में लगा हुआ है, उसका वह उपयोग अशुभ है।

शुभोपयोग के अनेक भेद, प्रभेद होने से उनकी बंधने वाली प्रकृतियाँ भी अनेक हैं तथा अशुभोपयोग के भेद, प्रभेद अनेक होने के कारण उनके बंधने वाली प्रकृतियाँ भी अनेक हैं गोम्मट्टसार कर्मकांड में पुण्य एवं पाप प्रकृतियों का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है-

पुण्य प्रकृतियाँ-

सादं तिण्णेवाउं उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी।
देहा बंधणसंघादांगोवंगाई, वण्णचओ।। (41)
समचउरवज्जरिसहं उवघादूणगुरुछक्क सग्गमणं।
तसबारसट्ठसट्ठी बादालमभेददो सत्था।। (42) गो.सार कर्म.

सातावेदनीय, तीन आयु उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, पाँच शरीर, पाँच बंधन, पाँच संघात, तीन अंगोपांग, वर्णचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, उपघात बिना अगुरुलघुषट्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रस आदि बारह ये अड़सठ प्रकृतियाँ भेदविवक्षा से है तथा अभेद विविक्षा से पुण्य प्रकृतियाँ 42 ही हैं।

पाप प्रकृतियाँ

घादीणीचमसादं णिरयाऊ णिरयतिरियदुग जादी
संठाणसंहदीणं चदुपणगं च वझणचओ।। (43)
उवघादमसग्गमणं थावरदसयं च अप्प सत्थाहु।
बंधुदयं पडि भेदे अडणउदि सयं दुचदुर सीदिदरे।। (44) गो.सा.कर्म.

घातिया कर्म की 47 प्रकृति तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, जाति 4, संस्थान 5, संहनन 5, (अशुभ) वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादि 10 ये अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियाँ हैं। भेद विवक्षा से बंध रूप 98 प्रकृतियाँ एवं उदय रूप 100 प्रकृतियाँ हैं। अभेद विवक्षा से वर्णादि कि 16 प्रकृति घटाने पर बंधन रूप 82 और उदय रूप 84 प्रकृतियाँ हैं।

पुण्य के फल-

पुनात्यात्मानं पूयतेनेनेति वा पुण्यम्। सर्वार्थसिद्धि

जो आत्मा को पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होती है वह पुण्य है। धवल-सिद्धांत शास्त्र में वीरसेन स्वामी ने कहा है-

काणि पुण्य फलानि?

पुण्य के फल कौनसे हैं?

तित्थयर-गणहर-रिसि-चक्कवट्टि

बलदेव-वासुदेव-सूर-विज्जाजरिद्धीओ।

तीर्थंकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, देव और विद्याधरों की ऋद्धियाँ पुण्य के फल हैं। सम्यग्दृष्टि के द्वारा किया गया पुण्य संसार का कारण कभी नहीं होता यह नियम है। यदि सम्यग्दृष्टि पुरुष के द्वारा किये हुए पुण्य में निदान न किया जाय तो वह पुण्य नियम से मोक्ष का ही कारण होता है।

लद्धं जइ चरम तणु चिरकय पुण्णेण सिज्झए णियमा।

पाविय केवल णाणं जह खाइय संजमं सुद्धं।। (423)

यदि वह जीव अपने चिरकाल के संचित किए हुए पुण्य कर्म के उदय से चरम शरीरी हुआ तो वह जीव यथाख्यात नाम के शुद्ध चारित्र को धारण कर तथा केवलज्ञान को पाकर नियम से सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

तम्हा सम्मादिट्ठी पुण्णं मोक्खस्स कारणं हवई।

इय णाऊण गिहत्थो पुण्णं चायरउ जत्तेण।। (424)

उपरोक्त कथनों से सिद्ध होता है कि सम्यग्दृष्टि का पुण्य मोक्ष का कारण होता है, यही समझकर गृहस्थों को यत्नपूर्वक पुण्य का उपार्जन करते रहना चाहिए।

उवसामगो व खवगो वा।

सो सूहुमसांपराओ जहखादेणूणओ किंचि।। (474)

जिस उपशम श्रेणी वाले अथवा क्षपक श्रेणी वाले जीव के अणुमात्र लोभ-सूक्ष्म कृष्टि को प्राप्त लोभ कषाय के उदय का अनुभव होता है उसको सूक्ष्म संपराय संयमी कहते हैं। इसके परिणाम यथाख्यात चारित्र वाले जीव के परिणामों से कुछ ही कम होते हैं क्योंकि यह संयम दशवें गुणस्थान में होता है यथाख्यात संयम ग्यारहवें से शुरू होता है।

ये सब नय विवक्षा में अनेकांत दृष्टि से ही सिद्ध होता है क्योंकि हर विषय की सिद्धि अनेकांत से होती है एकांत से नहीं। कहा भी है-

बंध पडि एयत्तं लक्खणदो हवदि तस्स भिण्णत्तं।

तम्हा अमुत्ति भावो णेगंतो होदि जीवस्स।।

बंध के प्रति जीव की एकता है और लक्षण से उसकी भिन्नता है, इसलिए जीव के अमूर्तिक भाव एकांत से नहीं हैं।

रूवरसगंधफासा सद्दवियप्पा वि णत्थि जीवस्य।

णो संठाणं किरिया तेण अमुत्तो हवे जीवो।। (119) नयचक्र, पृ.71

जीव में न रूप है, न रस है, न गंध है, न स्पर्श है, न शब्द के विकल्प है, न आकार है न क्रिया है इस कारण से जीव अमूर्तिक है।

जो हु अमुत्तो भणिओ जीव सहावो जिणेहि परमत्थो।

उवयरियसहावादो अचेयणो मुत्तिसंजुत्तो।। (120)

जिनेन्द्र देव ने जो जीव को अमूर्तिक कहा है वह जीव का परमार्थ स्वभाव है। उपचारित स्वभाव से तो मूर्तिक और अचेतन है।

कर्त्ता के विभिन्न रूप

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।

चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं।। (8) (द्रव्य सं.)

पुद्गलकर्मादीनां कर्त्ता व्यवहारतः तु निश्चयतः।

चेतनकर्मणां आत्मा शुद्धनयात् शुद्धभावानाम्।।

According to Vyavhara Naya is the doer performer of the Pudgala Karmas. According to Nischaya Naya (Jiva is the doer performer of) Thought Karmas. According to Shuddha Naya (Jiva is the doer) of Shuddha Bhavas.

आत्मा व्यवहार से पुद्गल आदि का कर्त्ता है, निश्चय से चेतन कर्म का कर्त्ता है और शुद्ध नय से शुद्ध भावों का कर्त्ता है।

इस गाथा में जीव के विभिन्न कर्तृत्व भावों का वर्णन किया गया है। व्याकरण की दृष्टि से ''स्वतंत्र कर्त्ता'' अर्थात् जो कर्म को स्वतंत्र रूप से करता है उसे कर्त्ता कहते हैं। जीव भी विभिन्न अवस्था में विभिन्न कर्मों का कर्त्ता बनता है। उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म का तथा आदि शब्द से औदारिक,

वैक्रियक और आहारक रूप तीन शरीर तथा आहार आदि छह पर्याप्तियों के योग्य जो पुद्गल पिण्ड रूप नो/ईषत् कर्म है उसका कर्त्ता है। स्थूल व्यावहारिक दृष्टि से अर्थात् उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से घट, पट, कुर्सी, टेबल, घर, चटाई, विभिन्न वैज्ञानिक उपकरण, ईंट, मूर्ति आदि का भी जीव कर्त्ता है। निश्चय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चय नय से जीव चेतन कर्म अर्थात् मिथ्यात्व भाव, ईर्ष्या भाव, घृणा, द्वेष, लोभ, काम प्रवृत्ति, अहं प्रवृत्ति का कर्त्ता है परंतु परम शुद्ध निश्चय नय से जीव शुद्ध-बुद्ध, नित्य-निरंजन, सच्चिदानंद स्वरूप स्वभाव में परिणमन करता है तब अनंत ज्ञान, अनंत अतीन्द्रिय सुखादि भावों का कर्त्ता होता है। छद्मस्थ अवस्था में भावना रूप विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चय नय से स्वभाव का कर्त्ता भी होता है परंतु केवली एवं मुक्त अवस्था में तो शुद्ध निश्चय नय से पूर्ण रूप से अनंत ज्ञानादि भावों का कर्त्ता होता है। वस्तुतः यहाँ जो आध्यात्मिक दृष्टि है उसकी अपेक्षा अशुभ, शुभ, शुद्ध भावों का जो परिमणन है उसी का कर्तृत्ववपना यहाँ कहा गया है, न कि हस्तपादादि से जो कार्य किया जाता है उसे यहाँ कर्त्तापने में स्वीकार किया गया है और एक विशेष आध्यात्मिक दृष्टि यह है कि शुद्ध निश्चय नय से जो शुद्ध भावों का कर्त्ता कहा गया है उसका अर्थ यह है कि उन शुद्ध भावों का जीव वेदन करता है न कि उन शुद्ध भावों का निर्माण करता है या बनाता है। प्राचीन आचार्यों ने भी जीव के विभिन्न कर्त्तापने का वर्णन विभिन्न दृष्टिकोण से किया है। यथा-

जीव परिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गल परिणमदि।
पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदे।। गा. 18 समयसार

जीव परिणाम को निमित्त मात्र करके पुद्गल कर्मभाव से परिणमन करते हैं। इसी प्रकार दैव (कर्म) को शक्ति प्रदान करने वाला पुरुष परम पुरुषार्थ से हीन पुरुषार्थ है और उस शक्ति के अनुशासन में शासित होने वाला पुरुष है। जब पुरुष उसको शक्ति प्रदान करता है, तब दैव विभिन्न रूप धारण करके विभिन्न कार्य करता है।

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेय विहं।
मंसवसारुहिरादिभावे उदराग्गे संजुत्तो।।

जैसे पुरुष द्वारा ग्रहण किया गया आहार उदराग्नि से युक्त हुआ अनेक प्रकार माँस, रुधिर आदि भावों रूप परिणमता है, उसी प्रकार कर्म पुद्गल भी जीवों के रागादि

भावों को प्राप्त करके 8 प्रकार अथवा अनेक प्रकार दैव रूप में परिणमन करता है।

भावो कम्म णिमित्तो कम्मं पुण भाव कारणं हवदि।

ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं।। गा. 60 पंचास्तिकाय

निर्मल चैतन्यमई ज्योति स्वभाव रूप शुद्ध जीवास्तिकाय से प्रतिपक्षी भाव जो मिथ्यात्व व रागादि परिणाम है वह कर्मों के उदय से रहित चैतन्य का चमत्कार मात्र जो परमात्मा स्वभाव है उससे उल्टे जो हृदय में प्राप्त कर्म है उनके निमित्त से होता है तथा ज्ञानावरण आदि कर्मों से रहित जो शुद्धात्म तत्त्व है उससे विलक्षण जो नवीन द्रव्यकर्म है सो निर्विकार शुद्ध आत्मा की अनुभूति से विरुद्ध जो रागादि भाव हैं उनके निमित्त से बंधते हैं। ऐसा होने पर भी जीव संबंधी रागादि भावों का और द्रव्य कर्मों का परस्पर उपादान कर्त्ता जीव ही है तथा द्रव्य कर्मों का उपादानकर्त्ता कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल ही है। दूसरे व्याख्यान से यह तात्पर्य है कि यद्यपि शुद्ध निश्चय नय से विचार किए जाने पर जीव रागादि भावों का कर्त्ता है यह बात सिद्ध है।

आदा कम्म मिलिमसो परिणामं लहदि कम्म संजुत्तं।

तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामे।। 121 प्रवचनसार

''संसार'' नामक जो यह आत्मा का तथाविध उस प्रकार का परिणाम है वही द्रव्यकर्म के चिपकने का बंध हेतु है, अब उस प्रकार के परिणाम का हेतु कौन है? इसके उत्तर में कहते हैं कि द्रव्यकर्म उसका हेतु है क्योंकि द्रव्यकर्म की संयुक्तता से ही वह बंध है।

ऐसा होने से इतरेतराश्रय दोष आएगा क्योंकि अनादिसिद्ध द्रव्यकर्म के साथ संबद्ध आत्मा का जो पूर्व का द्रव्यकर्म है उसका वहाँ हेतु रूप से ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार नवीन द्रव्यकर्म जिसका कार्यभूत है और पुराना द्रव्यकर्म जिसका कारणभूत है, ऐसा आत्मा का तथाविध परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से द्रव्य कर्म ही है और आत्मा भी अपने परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से है।

जीव परिणाम हेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।

पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि।। (86)

ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।

अण्णोण्ण णिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हंपि।। (87)

यद्यपि जीव के राग-द्वेष परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य कर्मत्व रूप

परिणमन करता है। वैसे ही पौद्गलिक कर्मों के उदय का निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणमन करता है। तथापि जीवकर्म के गुण रूपादिक को स्वीकार नहीं करता, उसी भाँति कर्म भी जीव के चेतनादिक गुणों को स्वीकार नहीं करता किन्तु मात्र इन दोनों का परस्पर एक-दूसरे के निमित्त से उपर्युक्त विकारी परिणमन होता है।

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सकेण भावेण।

पुग्गल कम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं।। गा. 88 समयसार

इस प्रकार जीव और पुद्गल के परस्पर में निमित्त कारणपना है इसका व्याख्यान किया गया है।

व्यवहार नय से भिन्न षट्कारक के अनुसार जीव के राग-द्वेष निमित्त पाकर कर्म परमाणु, द्रव्यकर्म रूप में परिणमन करता है। द्रव्यकर्म के उदय से भावकर्म उत्पन्न होते हैं परन्तु निश्चयनय से एक द्रव्य अन्य द्रव्य का कर्त्ता नहीं होने से जीव के परिणाम का हेतु पुद्गल नहीं है एवं पुद्गल के परिणाम का हेतु जीव नहीं है। पंचास्तिकाय में कहा है-

''निश्चयनयेनाभिन्नकारकत्वाकर्मणो

जीवस्य च स्वयं स्वरूप कर्तृत्वमुक्तम्।''

निश्चय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के अपने-अपने रूप के कर्त्ता हैं। निश्चय से जीव, पुद्गल का कर्त्ता नहीं होने पर भी व्यवहार नय से कर्त्ता है।

यदि एकांततः निश्चयनय के समान व्यवहारनय से भी जीव, कर्म का कर्त्ता नहीं है तब अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जायेंगे। व्यवहार से भी जीव कर्म का कर्त्ता नहीं होने पर कर्म बंधन नहीं होगा, कर्मबंध के अभाव से संसार का अभाव हो जाएगा। संसार के अभाव से मोक्ष का भी अभाव हो जाएगा, जो कि आगम, तर्क, प्रत्यक्ष एवं अनुभव विरुद्ध है। निश्चयनय का विषय व्यवहार से संयोजना करके शिष्य, गुरुवर्य कुंदकुंदाचार्य से निम्न प्रकार प्रश्न करता है।

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं।

किध तस्स फलं भुञ्जदि अप्पा कम्मं च देदि फलं।। गा. 63 पंचास्तिकाय प्राभृत

आगे पूर्वोक्त प्रकार के अभेद छह कारक का व्याख्यान करते हुए निश्चयनय से यह व्याख्यान किया गया है। इसे सुनकर 'नयो' के विचारों को न जानता हुआ

शिष्य एकांत का ग्रहण करके पूर्व पक्ष करता है।

यदि द्रव्यकर्म एकांत से बिना जीव के परिणाम की अपेक्षा करता है और वह आत्मा अपने को ही करता है-द्रव्यकर्म को नहीं करता है तो किस तरह आत्मा का उस बिना किए हुए कर्म के फल को भोगता है और यह जीव से बिना किया हुआ कर्म आत्मा को फल कैसे देता है? इस प्रश्न का आगमोक्त यथार्थ प्रत्युत्तर देते हुए कुंदकुंद स्वामी बताते हैं-

''निश्चयेन जीवकर्मणोश्चैककर्तत्वेऽपि व्यवहारेण
कर्मदत्तफलोपलंभो जीवस्य न विरुद्ध्यत इत्यत्रोक्तम्।''
जीवा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढ़गहणपडिबद्धा।
काले विभुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुंजन्ति।। (67)

आगे शिष्य ने जो पूर्वपक्ष किया था कि बिना किए हुए कर्मों का फल जीव किस तरह भोगता है उसी का उत्तर नय विभाग से जीव फल को भोगता है ऐसा युक्तिपूर्वक दिखाते हैं।

संसारी जीवों के अपने-अपने रागादि परिणामों के निमित्त से तथा पुद्गलों में स्निग्ध-रुक्ष गुण के कारण द्रव्य-कर्मवर्गणाएँ जीव के प्रदेशों में जो पहले से ही बंधी हुई होती हैं वे ही अपनी स्थिति के पूरे होते हुए उदय में आती हैं तब अपने-अपने फल को प्रगट कर झड़ जाती है, उसी समय वे कर्म अनाकुलता लक्षण जो पारमार्थिक सुख है उससे विपरीत परम आकुलता को उत्पन्न करने वाले सुख तथा दुःख उन जीवों को मुख्यता से देती है, जो मिथ्यादृष्टि है अर्थात् जो निर्विकार चिदानंदमयी एक स्वरूप भाव जीव को और मिथ्यात्व रागादि भावों को एक रूप ही मानते हैं और जो मिथ्याज्ञानी हैं अर्थात् जिनको यह ज्ञान है कि जीव राग-द्वेष-मोहादि रूप ही होते हैं तथा जो मिथ्या चारित्री हैं अर्थात् जो अपने को रागादि के परिणमन करते हुए जीव अभ्यंतर में अशुद्ध निश्चय से ही हर्ष या विषाद रूप तथा व्यवहार से बाहरी पदार्थों में नाना प्रकार इष्ट-अनिष्ट इन्द्रियों के विषयों के प्राप्ति रूप मधुर या कटुक विष के रस के आस्वादन रूप सांसारिक सुख या दुःख की वीतराग परमानंदमयी सुखामृत के रसास्वाद के भोग को न पाते हुए भोगते हैं, ऐसा अभिप्राय जानना।

एवं कत्ता भोत्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।
हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंच्छण्णो।। (69)

इस प्रकार अपने कर्मों से कर्त्ता भोक्ता होता हुआ आत्मा मोहाच्छादित वर्तता हुआ अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

इस प्रकार प्रगट प्रभुत्व शक्ति के कारण जिसने अपने कर्मों द्वारा कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व का अधिकार ग्रहण किया है ऐसे इस आत्मा को अनादि मोहाच्छादितपने के कारण विपरीत अभिनिवेश की उत्पत्ति होने से सम्यग्ज्ञान ज्योति अस्त हो गई है, इसलिए यह सान्त अथवा अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

जं जं जे जे जीवा पज्जाणं परिणमंति संसारे।

रायस्स य दोसस्स य मोहस्स वसा मुणेयव्वा।। (988)

संसार में जो-जो जीव जिस-जिस पर्याय में परिणमन करते हैं वे सब राग-द्वेष और मोह के वशीभूत होकर ही परिणमते हैं, ऐसा जानना।

विश्व रंगमंच के प्रेक्षक व अभिनयकर्त्ता

(चाल : छोटी-छोटी गैय्या....., सायोनारा.....)

अकृत्रिम है विश्व रंगमंच...प्रेक्षक होते हैं भगवान् सिद्ध।
संसारी जीव तो अभिनयकर्त्ता...राग-द्वेष-मोह से संयुक्त।। (1)

भौतिक तत्त्व से बना रंगमंच...आकाश के मध्य में स्थित।
धर्म-अधर्म व काल संयुक्त...गति स्थिति-परिणमन निमित्त।। (2)

अनादि-अनिधन-स्वयंभू-शाश्वत...उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त।
चौरासी लक्ष्य योनि चतुर्गति में...अभिनय करते हैं संसारी जीव।। (3)

अभिनयकर्त्ता के होते संचालक...द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म।
विविध रूप-रंग-स्वांग धरकर...नाचते विवश हो संसारी जीव।। (4)

कभी राजा-रंग व काला-गोरा...धनी-गरीब व स्त्री-पुरुष।
पशु-पक्षी व कीट-पतंग-वृक्ष...नारकी देवता रूप से (संसारी) जीव।। (5)

स्वयं तो पराधीन व दीन-हीन...जन्म-जरा-रोग-मरण पूर्ण।
अस्त-व्यस्त व संत्रस्त सम्पन्न...तोभी स्वयं को मानते गुण संपन्न।। (6)
(तोभी अनंत सुख हेतु न प्रयत्न)

पंचलब्धियों को पाकर भव्य...देव-शास्त्र-गुरु का पा सान्निध्य।

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र द्वारा...कर्म नाशकर बनते शुद्ध-बुद्ध।। (7)

तब ही वे जीव बनते (हैं) प्रेक्षक...अनंत ज्ञान दर्शन सुख सम्पन्न।
जन्म-जरा-मरण से रहित...'कनक' का लक्ष्य बनना प्रेक्षक।। (8)

सीपुर, दिनांक 08.10.2016, मध्याह्न 2.47

शोक/(रोना) की आत्मकथा व आत्मव्यथा

(चाल : पूछ मेरा क्या नाम रे.....)

शोक/(रोना) मेरा नाम है, स्वस्थ्य करना भी काम है।
भक्ति-संवेदना-उत्साह-प्रेम, भय दुःख/(हानि) से मेरा जन्म है।।

आनंद-भक्ति, संवेदना, व उत्साह-आश्रु बहता।
भय-दुःख-हानि-विरह से, मेरे कारण अश्रु बहता।।

पश्चात्ताप पर दुःख कातर से, मेरे कारण अश्रु बहता।
कोमल हृदयी संवेदनशील (जीव), मुझे अधिक प्यार करता।।

क्रूर-कठोर-निर्दयी मानव, मुझसे प्यार न करते।
अहंकारी-वर्चस्व वाले, मुझसे घृणा करते।।

संक्लेश युक्त या ठगी के लिए, जो घड़ियाली आसु बहाते।
ऐसे लोग तो पाप बाँधकर, उभयलोक में दुःखी होते।।

कोमल हृदयी संवेदनशील, भक्ति-दया से मुझे पाते।
वे सभी पुण्य कर्म बाँधते, जो पश्चात्ताप से (मुझे) पाते।।

दंभ-कुंठा-वर्चस्व के कारण, जो मुझे प्रेम न करते।
वे तनाव रोगादि पाते, पाप से दुर्गति जाते।।

मेरे कारण अश्रु बहने से, तनाव चिन्ता दूर होते।
तन-मन-इन्द्रिय स्वस्थ्य होते, ताजगी-स्फूर्ति अनुभव करते।।

दोष दूर करते वे पाप न करते, दूसरों को भी कष्ट न देते।
दान-दया-सेवा-परोपकार करते, भक्ति-वैयावृत्ति करते।।

मेरे स्वरूप को जो सही न जानते, दुर्बलों के चिह्न मानते हैं।

मेरे सकारात्मक शुभ रूप को, जो न जाने वे दुःखी होते।।

वाणी गदगद व पुलकित, नेत्र द्वय से अश्रु स्त्राव करते।
वे भक्तजन भक्ति के कारण सातिशय पुण्य बंध करते।।

धर्म से लेकर आधुनिक विज्ञान, मेरे विविध रूप को जानते।
'लाफिंग थैरेपी' से रोग भगाते, 'कनक' (मेरा) शुभ रूप पालते।।

सीपुर, दिनांक 09.10.2016, रात्रि 8.49

संदर्भ-

असाता वेदनीय के आस्रव

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य। (11)

The inflow of pain bringing feeling असाता वेदनीय Karmic matter is due to the following :

1. दुःख pain 2. शोक sorrow 3. ताप repentence, remorse 4. आक्रन्दन weeping 5. वध depriving of vitality 6. परिवेदना piteous of pathetic moaning to attract compassion.

अपने में, दूसरे में या दोनों में विद्यमान, दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिवेदना ये असाता वेदनीय कर्म के आस्रव हैं।

(1) दुःख-पीड़ा लक्षण परिणाम को दुःख कहते हैं। विरोधी पदार्थों का मिलना, अभिलषित (इष्ट) वस्तु का वियोग, अनिष्ट संयोग एवं निष्ठुर वचन श्रवण आदि बाह्य साधनों की अपेक्षा से तथा असाता वेदनीय के उदय से उत्पद्यमान पीड़ा लक्षण परिणाम दुःख कहा जाता है।

(2) शोक-अनुग्राहक के सम्बन्ध का विच्छेद होने पर वैकल्प विशेष शोक कहलाता है। अनुग्रह एवं उपकार करने वाले जो बन्धु आदि हैं उनका विच्छेद वा वियोग हो जाने पर उसका बार-बार विचार करके जो चिन्ता, खेद और विकलता आदि मोहकर्म विशेष शोक के उदय से मानसिक ताप होता है, वह शोक कहलाता है।

(3) ताप-परिवादादि निमित्त के कारण कलुष अन्तःकरण का तीव्र अनुशय ताप है। परिभवकारी कठोर वचन के सुनने आदि से कलुष चित्त वाले व्यक्ति के जो भीतर-ही-भीतर तीव्र जलन या अनुशय पश्चाताप के परिणाम होते हैं, उसे ताप कहते हैं।

(4) आक्रन्दन–परिताप से उत्पन्न अश्रुपात, प्रचुर विलाप आदि से अभिव्यक्त होने वाला क्रन्दन ही आक्रन्दन है। मानसिक परिताप के कारण अश्रुपात, अङ्गविकार-माथा फोड़ना, छाती कूटना आदि पूर्वक विलाप करना, रूदन करना आदि क्रियाएँ होती हैं, वह आक्रन्दन है वा उसे आक्रन्दन समझना चाहिये।

(5) वध–आयु, इन्द्रिय, बल, श्वासोच्छ्वास आदि का वियोग करना वध है। भवधारण का कारण आयु है। रूप-रसादि, ग्रहण करने का साधन वा निमित्त इन्द्रियाँ हैं। कायादि वर्गणा का अवलम्बन श्वासोच्छ्वास का लक्षण प्राण है। इन प्राणों का परस्पर विघात करना, वध कहा जाता है।

परिवेदन–अतिसंक्लेशपूर्वक स्व पर अनुग्राहक, अभिलषित विषय के प्रति अनुकम्पा, उत्पादक रूदन परिवेदन है। अतिसंक्लेश परिणामों के अवलम्बन पूर्वक ऐसा रूदन करना, विलाप करना जिसे सुनकर अपने तथा दूसरे को अनुकम्पा उत्पन्न हो जाय, उसे परिवेदन कहते हैं।

यद्यपि दुःख की ही अनंत जातियाँ होने से ये सभी दुःख रूप हैं तथापि कुछ मुख्य-मुख्य जातियों का निर्देश किया है। जैसे 'गौ' अनेक प्रकार की होती है और केवल 'गौ' कहने से सबका ज्ञान नहीं हो पाता अतः खण्डी, मुण्डी, शाबलेय, श्वेत काली आदि विशेषों को ग्रहण किया जाता है, उसी प्रकार दुःख विषयक आस्रव के असंख्येय लोकप्रमाण भेद संभव होने से दुःख ऐसा कहने पर विशेष ज्ञान न होने से कुछ विशेष निदर्शन से उसके विवेक (भेद) की प्रतिपत्ति किस प्रकार हो सके, इसलिये शोकादि को पृथक् ग्रहण किया है; जिससे ये सर्व भिन्न-भिन्न सुगृहीत होते हैं, इनमें दुःख का लक्षण और उसी का विस्तार है, वह सुष्ठु रीति से दुःख के पर्यायवाची शब्दों को जानने के लिये हैं।

दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन का ग्रहण दुःख के विकल्पों का उपलक्षण रूप है। जो उपलक्षण होता है, वह अपने सदृश का ग्राही होता है अतः शोकादि के ग्रहण से असाता वेदनीय के आस्रव के कारणभूत अन्य सर्व विकल्पों का संग्रह हो जाता है। अशुभ प्रयोग, परपरिवाद, पैशून्य, अनुकम्पा का अभाव (अदया), परपरिताप, आंगोपांगच्छेद, भेद, ताड़न, त्रासन, तर्जन, भर्त्सन तक्षण, विशंसन, बन्धन, रोधन, मर्दन, दमन, वाहन, विहेड़न, ह्रेपण, शरीर को रूखा कर देना, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, संक्लेशप्रादुर्भावन, अपनी आयु यदि अधिक हो तो उसका अभिमान, निर्दयता, हिंसा,

महारंभ, महापरिग्रह का अर्जन, विश्वासघात, कुटिलता, पापकर्म जीवित्व, अनर्थदण्ड, विषमिश्रण, बाण, जाल, पाश, रस्सी पिञ्जरा, यंत्र आदि हिंसा के साधनों का उत्पादन, बलाभियोग शस्त्र देना और पापमिश्रित भाव इत्यादि भी दुःख शोकादि से गृहीत होते हैं। आत्मा में, पर में और उभय में रहने वाले ये दुःखादि परिणाम असाता वेदनीय के आस्रव के कारण होते हैं। तत्त्वार्थसार में कहा भी है-

दुःखं शोको वधस्तापः क्रन्दनं परिदेवनम्।
परात्मद्वितयस्थानि तथा च परपैशुनम्।।
छेदन भेदनं चैव ताडनं दमनं तथा।
तर्जनं भर्त्सनं चैव सद्यो विशंसनं तथा।।21।।
पापकर्मोपजीवित्वं वक्रशीलत्वमेव च।
शस्त्रप्रदानं विश्रम्भघातनं विषमिश्रणम्।।22।।
श्रृङ्खलावागुरापाशरज्जुजालादिसर्जनम्।
धर्मविध्वंसनं धर्मप्रत्यूहकरणं तथा।।23।।
तपस्विगर्हणं शीलव्रतप्रच्यावनं तथा।
इत्यसद्वेदनीयस्य भवन्त्यास्त्रवहेतवः।।24।।

पराये, अपने तथा दोनों में स्थित दुःख, शोक, वध, ताप, क्रन्दन और परिवेदन तथा दूसरे की चुगली, छेदना, भेदना, ताड़ना, दमन करना, डाँटना, झिड़कना, शीघ्रता से (अपराध का विचार किये बिना ही) घात करना, पाप कार्यों से जीविका करना, कुटिल स्वभाव रखना, शस्त्र देना, विश्वासघात करना, विष मिलाना, सांकल, जाल, पाश, रस्सी तथा जाल आदि का बनाना, धर्म का विध्वंस करना, धर्म के कार्यों में विघ्न करना, तपस्विजनों की निन्दा करना और शीलव्रत से च्युत करना ये सब आसाता वेदनीय के आस्रव के हेतु हैं।

साता वेदनीय का आस्रव

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य। (12)

1. भूतानुकम्पा Compassion for all living beings.
2. व्रत्यानुकम्पा Compassion for the vowers.
3. दान Charity.
4. सरागसंयम Selfcontrol with slight attachment etc. i.e.

5. संयमासंयम Restrain by vows of some but not other passions.

6. अकामनिर्जरा Equanimous submission to the fruition of karma.

7. बालतप Austerities not based upon right knowledge.

8. योग Contemplation.

9. क्षान्ति Forgiveness and

10. शौच Contentiment. These are the cause of inflow of pleasure bearing feeling karmic matter, साता वेदनीय।

भूतअनुकम्पा, व्रतअनुकम्पा, दान और सरागसंयम आदि का योग तथा क्षान्ति और शौच ये साता वेदनीय के आस्रव हैं।

भूत–आयुकर्म के उदय विशेष से होने वाले भूत कहलाते हैं। आयुकर्म के उदय से उन-उन योनियों में होने वाले प्राणियों को भूत कहते हैं अर्थात् सर्वप्राणी भूत कहलाते हैं।

व्रती–अहिंसादि व्रतों को धारण करने वाले व्रती कहलाते हैं। वे व्रती दो प्रकार के हैं-श्रावक और मुनि। आगार (घर) के प्रति अनुत्सुक संयतीजन अनगार है और संयतासंयत गृहस्थ एकदेश व्रती है।

अनुकम्पा–अकम्पन को अनुकम्पा कहते हैं। दयार्द्र व्यक्ति का हृदय दूसरे की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझकर काँप जाता है, वह अनुकम्पा है। भूत (प्राणी) और दोनों प्रकार के व्रतियों में अनुकम्पा भूतव्रत्यनुकम्पा है।

दान–पर की अनुग्रह बुद्धि से अपनी वस्तु का त्याग करना दान है। आत्मीय धन आदि वस्तु का दूसरों का उपकार करने की बुद्धि से त्याग करना दान कहा जाता है।

सराग–कषायों को निवारण करने में तत्पर अक्षीणकषायी सराग कहलाता है। पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से जिसकी कषायें शांत नहीं हुई है परन्तु जो कषायों का निवारण (शांत) करने के लिए तैयार है, वह सराग कहलाता है।

सरागसंयम–प्राणियों और इन्द्रियों में अशुभ प्रवृत्ति की विरति का नाम संयम है। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय आदि प्राणियों में और चक्षु आदि पंचेन्द्रियों के विषयों में अशुभ

प्रवृत्ति का त्याग करना वा अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्त होना संयम है। अर्थात् प्राणियों की रक्षा करना और इन्द्रियों की विषय-प्रवृत्ति को रोकना संयम है। सराग (राग सहित प्राणी) का संयम सरागसंयम है अथवा सराग (राग के साथ) संयम राग संयम है।

आदि शब्द से संयमासंयम, अकामनिर्जरा, बालतप आदि का भी ग्रहण है। संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बालतप का भी आदि शब्द से ग्रहण किया गया है। एकदेश विरति को संयमासंयम कहते हैं अर्थात् 'जो त्रस हिंसा का त्याग करने से संयम और स्थावर हिंसा का त्याग न करने से असंयम तथा दोनों संयम और असंयम एक साथ होने से संयमासंयम कहलाता है। विषयों के अनर्थ की निवृत्ति को आत्म-अभिप्राय से नहीं करते हुए परतंत्रता के कारण भोगोपभोग का निरोध होने पर शांतिपूर्वक सहन करना अकामनिर्जरा है। यथार्थ प्रतिपत्ति (ज्ञान) अभाव होने से अज्ञानी मिथ्यादृष्टि बाल कहलाते हैं। उन अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों का अग्नि में प्रवेश, पंचाग्नि तप आदि बालतप है।'

योग-निरवद्य क्रिया विशेष के अनुष्ठान को योग कहते हैं। योग अर्थात् पूर्ण उपयोग से जुट जाना। योग, समाधि, सम्यक् प्रणिधान ये सब एकार्थवाची है। दूषण की निवृत्ति के लिए योग शब्द का ग्रहण किया गया है अथवा, भूतव्रत्यनुकम्पा, दान और सरागसंयम आदि का योग भूतवृत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोग कहलाता है।

क्षान्ति-धर्मप्रणिधान (धार्मिक भावनाओं) से क्रोधादि की निवृत्ति करना क्षान्ति है। क्रोधादि कषायों को शुभ परिणाम-भावनापूर्वक निवृत्ति करना क्षान्ति कहलाती है। अर्थात् क्रोध के कारण मिलने पर भी सहनशील रहना, उत्तेजित नहीं होना, क्षान्ति है।

शौच-लोभ के प्रकारों के उपरम को शौच कहते हैं। लोभ के अनेक भेद हैं उनका उपरम करना, त्याग करना शुचि कहलाता है और शुचि का भाव शौच कहलाता है। स्वद्रव्य का ममत्व नहीं छोड़ना, दूसरे के द्रव्य का अपहरण करना, धरोहर को हड़पना आदि लोभ के प्रकार हैं। यहाँ पर इति शब्द प्रकारार्थक है। इस प्रकार भूतव्रत्यनुकम्पा आदि साता वेदनीय के आस्रव के कारण हैं।

तत्त्वार्थसार में कहा भी गया है-

दया दानं तपः शीलं सत्यं शौचं दमः क्षमा।
वैयावृत्यं विनीतिश्च जिनपूजार्जवं तथा।। (25) (अ.4)
सरागसंयमश्चैव संयमासंयमस्तथा।

भूतव्रत्यनुकम्पा च सद्वेद्यास्रवहेतवः।। (26)

दया, दान, शील, तप, सत्य, शौच, इन्द्रिय दमन, क्षमा, वैयावृत्य, विनय, जिन पूजा, सरलता, सरागसंयम, संयमासंयम, भूतानुकम्पा और व्रत्यनुकम्पा ये साता वेदनीय के आस्रव के हेतु है।

रोएँ जरूर, ताकि दिल हल्का हो जाए...

एक नये शोध के मुताबिक, अगर आप बहुत ज्यादा परेशान महसूस कर रही हैं तो आँसू की कुछ बूँदें भी आपको राहत पहुँचाने का काम करती हैं और 90 मिनट आप खुद को इतना परेशान और उदास नहीं महसूस करेंगी।

परिणामों में अंतर्विरोध-पहले हुए शोधों में लोगों से पूछा गया कि रोने के बाद उन्हें कैसा महसूस होता है तो यह देखने को मिला कि रोने के बाद लोगों का मूड बहुत हद तक अच्छा हो जाता था, जबकि दूसरी तरफ एक शोध में जब लोगों के रोने को मापा गया तो पाया गया कि बहुत से लोग रोने के तुरंत बाद बहुत ही बुरा महसूस करते हैं। तिलबर्ग यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर अस्मिर ग्रैकनिन ने तीन अलग-अलग समय लिए, जिसमें रोने के तुरंत बाद वाला अनुभव, 20 मिनट के बाद और 90 मिनट के बाद के अनुभव को रिकॉर्ड किया।

रोएँ या नहीं-फिल्म देखने के बाद पूछा गया था कि वे रोए है या नहीं। शोध में 69 फीसदी ने 'हाची' देखी थी और 40 फीसदी ने 'ला विता ए बेला।' उस दौरान सब रोए थे। शोधकर्त्ताओं ने माना कि इस दौरान बहुतों की आँखें नम जरूर हुई थीं। फिल्म खत्म होने के तुरंत बाद सभी प्रतिभागियों को मूड से संबंधित फार्म भरने को दिये गये, फिर ऐसे ही फार्म उन्हें 20 मिनट और 90 मिनट बाद भी मिले। ग्रैकनिन और उनकी टीम ने सभी फार्म्स का तुलनात्मक अध्ययन किया, जिसमें सामने आया कि फिल्म देखने के तुरंत बाद लोगों को रोना सबसे बुरा लगा लेकिन 20 मिनट बाद उनका मूड काफी हद तक पहले जैसा हो गया था और 90 मिनट बाद लोगों ने यह महसूस किया कि रोने से वो बहुत ज्यादा अच्छा महसूस कर रहे हैं। जो लोग नहीं रोए थे, उनके मूड में कोई ज्यादा परिवर्तन नहीं हुआ। ग्रैकनिन के मुताबिक, रोने के बाद जैसे-जैसे वक्त बीतता है, मूड अच्छा होता जाता है।

दिखाई दो फिल्में-शोध के दौरान उन्होंने दो अलग-अलग समूह को अलग-

अलग फिल्म दिखाई। एक फिल्म थी 'ला विता ए बेला,' जिसमें यहूदी एक पिता नाजियों के डेथ कैंप में अपने बेटे को बचाने की हरसंभव कोशिश करता है। जबकि दूसरी फिल्म थी 'हाची,' जिसमें बताया गया था कि किस तरह एक वफादार कुत्ता हर रोज रेलवे स्टेशन पर अपने मालिक के आने का इंतजार किया करता था, उसके मरने के कितने सालों बाद भी।

भोगभूमिज व कर्मभूमिजों से प्राप्त शिक्षाएँ

(उपलब्धियों के दुरुपयोग से दुर्गति व सदुपयोग से सुगति)

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

भोगभूमिज कर्मभूमिज जीवों का वर्णन है जैन ग्रंथों में।
दोनों के विचार-आचार-विहार में अंतर मिलते हैं ग्रंथों में।। (ध्रुव)

उनके अंतः परीक्षण से मुझे मिलते हैं अनेक ज्ञान/(शिक्षा)।
सरल-सहज जीवन व उन्नत (भौतिक) संत्रस्त जीवन का ज्ञान।।

भोगभूमि में प्राकृत रूप से कल्पवृक्षों से प्राप्त होती थी वस्तु।
जिससे सरल-सहज जीवन यापन करते थे भोगभूमिज मनुष्य पशु।। (1)

सरल-सहज-शांत जीवन दीर्घ काल तक वे जीते थे।
अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार आतंक युद्धादि न करते थे।।

कृषि-व्यापार-वाणिज्य-सेवा-शिल्प-राजनीति आदि न करते थे।
सरल-सहज बुद्धि-कला-कौशल से सामाजिक बिना रहते थे।। (2)

स्वस्थ्य-सबल-सुख-शांतिमय प्राकृतिक जीवन जीते थे।
किन्तु धर्म की साधना बिना मोक्ष तत्त्व को न पाते थे।।

दीर्घ भोगभूमि के अनन्तर कर्मभूमि जब से प्रारंभ हुई।
कृषि-व्यापार आदि भी प्रारंभ हुए, शोध-बोध-शिक्षादि प्रारंभ हुई।। (3)

परिवार से लेकर समाज राष्ट्र की स्थापना भी प्रारंभ हुई।
सभ्यता-संस्कृति-धर्म आराधना तब से ही प्रारंभ हुई।।

जिससे मानव प्रकृति का दोहन से शोषध अधिक किया।
भेद-भाव पक्ष-पात से लेकर अन्याय से लेकर युद्धादि किया।। (4)

कतिपय मानव तो आत्मविश्वास ज्ञान-चारित्र से महान् बने/(हुए)।
समता-शांति आत्मविशुद्धि से महामानव से भगवान् बने/(हुए)।।

कुछ मानव तो ऐसी महानता से, भगवान् तो न बन सके।
किन्तु उनके आदर्श आंशिक रूप से श्रद्धान व आचरण कर सके।। (5)

दान-दया-परोपकार आदि करके, मरण अनन्तर स्वर्ग गये।
किन्तु आंशिक भी जो न पाल सके, वे पाप से नरक-तिर्यंच में गये।।

भोगभूमिज सभी मानव व तिर्यंच, मरकर स्वर्ग में ही जाते।
स्वर्ग से आकर उत्तम मानव बनकर, सुखमय जीवन यापन करते।। (6)

इससे अनेक शिक्षा मिलती, भौतिक तथा बौद्धिक विकास से।
सरल-सहज-सुख-स्वास्थ्यकर, जीवन न मिलते पाप करने से।।

सभ्यता-संस्कृति धर्म आराधना का, करते दुष्ट मानव दुरुपयोग।
अन्य धार्मिक प्रति भेद-भाव करके, करते घृणा से हत्या तक।। (7)

ऐसे मानव जीवन में भी दुःख पाते, मरकर बनते नारकी तिर्यंच।
संसार चक्र में भ्रमण करते, नहीं पाते सुख शांति तक।।

इसी से मुझे शिक्षा मिलती उपलब्धियों का करूँ सदुपयोग (वृद्धि)।
दुरुपयोग कभी न करूँ 'कनक' का, लक्ष्य शुद्ध-बुद्ध व सिद्धि।। (8)

सीपुर, दिनांक 08.10.2016, रात्रि 8.48

(भाषा-विज्ञान संबंधी शोधपूर्ण कविता)

बीज की आत्मकथा

(व्यवहार से लेकर मोक्षबीज)

(चाल : पूछ मेरा क्या नाम रे....., भक्ति बेकरार है.....)

बीज मेरा नाम है, विविध मेरा काम है।
व्यवहार से मोक्ष तक, सर्वत्र मेरा उदाहरण है।। (1)

बीज से अंकुर वृक्ष बनता, फूलना-फलना काम है।
तथाहि हर काम में भी, उदाहरण मेरा प्रधान है।। (2)

बीज बिना यथा वृक्षादि नहीं, तथाहि हर कार्य में कारण है।

कारण को ही बीज उपमा, देने का होता अविधान है।। (3)

धान, गेहूँ, बाजरा, मक्का, मूँग, उड़द, अरहर, चना है।
नारियल, बादाम, सुपारी, काजू, गुठली, गिरि मेरे उपनाम है।। (4)

मुझसे जीवित होते मानव, पशु-पक्षी व कीट-पतंग।
वृक्ष-लता-गुल्म-औषधि, मुझसे उत्पन्न करते विकास।। (5)

ऐसा ही हर कार्य के प्रमुख को, कहा जाता (हैं) बीज भूत मूल कारण।
बीजसूत्र, बीजगणित व बीजमंत्र, बीजाक्षर, बीजाणु मेरे उपनाम।। (6)

संसार वृक्ष का बीज हैं कर्म, भाव-द्रव्य नोकर्म रूप।
मोक्षफल हेतु बीज है भाव, शुभ से लेकर शुद्ध स्वरूप।। (7)

बुरे काम के बीज अशुभ भाव, राग द्वेष मोह काम क्रोध।
अच्छे काम के बीज शुभ भाव, दया दान सेवा सहिष्णु भाव।। (8)

मोक्ष के बीज है शुद्ध स्वभाव, रत्नत्रय युक्त पावन भाव।
ज्ञान-ध्यान व तप-त्याग, समता-शांति व शुचि भाव।। (9)

बीज नष्ट से यथा न वृक्ष, कर्मनाश से तथा मिले मोक्ष।
कार्य-कारण संबंध ही बीजसूत्र, 'कनक' का लक्ष्य परम मोक्ष।। (10)

सीपुर, दिनांक 11.10.2016, मध्याह्न 2.37

(भाषा-विज्ञान संबंधी शोधपूर्ण कविता)

मूल मेरा नाम है (आत्मकथा)

(व्यवहार से मोक्ष तक के मूल)

(चाल : छोटू मेरा नाम है.....)

मूल मेरा नाम है प्रमुखता मेरा काम है।
हर क्षेत्र में प्रमुख के आधार पर होता (सदा) काम है।। (ध्रुव)

वृक्षमूल से मोक्षमूल तक मैं रहता हूँ प्रमुख।
हर कार्य में मैं ही रहता हूँ सबसे बड़ा प्राथमिक।।

मूल के बिना यथा वृक्ष की स्थिति-वृद्धि न संभव।
तथाहि हर कार्य के प्रमुख-कारण होता है मूल।। (1)

यथा भाषा (कथन) व लिखने के मूल में होती है वर्णमाला।
गणित के मूल में यथाहि होती अंक की श्रृंखला।।

महल का मूल नींव है संसार का मूल मोह।
मोक्षमार्ग का मूल सम्यक्त्व, जिससे धर्म प्रारंभ।। (2)

सम्यक्त्व का मूल है श्रद्धान तत्त्वार्थ व स्व (मैं) तत्त्व श्रद्धान।
देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान सह अष्ट अंग अष्ट गुण।।

सबका मूल सत्य है जो द्रव्य-गुण-पर्याय युक्त।
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप संपूर्ण विश्व में व्याप्त।। (3)

भौतिक विश्व का मूल अणु है सुख का मूल होता आत्मा/(जीव)।
ज्ञान का मूल भी आत्मा है 'कनक' अतः चाहे स्वात्मा।।

मूल से ही मौलिक बनता स्वतंत्र-स्वावलंबी होता।
परावलंबन व अशुद्ध न होता, अनेकांतमय स्वभाव होता।। (4)

अन्य तो मेरे आश्रित होते अन्य को भी मैं आश्रय देता।
आध्यात्मिक भाव यथा जीवधर्म क्रियाकाण्ड (है) व्यवहार धर्म।।

सबके मूल में मैं हूँ स्थित, तथापि प्रायः अदृश्य।
तो भी मेरा अस्तित्व सबसे, महत्वपूर्ण अवश्य।। (5)

जो मुझे न देता महत्व उसका अस्तित्व शून्य।
मेरे (मूल) बिना न अस्तित्व (किन्तु) मैं ही नहीं हूँ सर्वस्व।।

मूल ही यथा न शाखा प्रशाखा, फूल-फल व बीज है।
तथाहि केवल सम्यक्त्व से, नहीं मिलता मोक्ष है।। (6)

मोक्ष हेतु सम्यक्त्व के साथ चाहिए ज्ञान चारित्र।
तथाहि हर कार्य हेतु चाहिए संपूर्ण कारक।।

मुझसे सिखो मानव मूल में न करो है तुम भूल।
मूल सहित विकास करो, यह ही शिक्षा का मूल।। (7)

मूल सिंचन से वृक्ष बढ़ता केवल पत्ति सिंचन से नहीं।
तथाहि पल्लवग्राही न बनो सनम्र सत्यग्राही बनो सभी।। (8)

सीपुर, दिनांक 10.10.2016, रात्रि 8.45

संदर्भ-

अमृतचन्द्र सूरी जो कुंदकुंद साहित्य के प्रथम टीकाकार थे वे पुरुषार्थ सिद्धि उपाय में मोक्षमार्ग में सम्यक्त्व की प्रथम भूमिका का वर्णन करते हुए कहते हैं-

तत्रादौ सम्यक्त्वं समुमाश्रयणीयमखिलयत्नेन।
तस्मिन्सत्येव यतो भवति ज्ञानं चरित्रं च।। (2)

रत्नत्रय रूपी मोक्षमार्ग में सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन का अखिल प्रयत्नपूर्वक आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान एवं चारित्र सम्यक् बनते हैं जिससे मोक्षमार्ग बनता है।

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन की प्राथमिकता एवं प्राथमिक भूमिका का प्रतिपादन करते हुए भगवद् कुंदकुंद आचार्य देव निम्न प्रकार बताते हैं-

''दंसण मूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं''।। (2)

अष्ट पाहुड के दंसण पा.

अनंत ज्ञानी अनंत जिनेन्द्र ने अपने शिष्यों को बताया है कि धर्म रूप वृक्ष की मूल सम्यग्दर्शन है।

जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्ते भट्ठा य।
एदे भट्ठा वि भट्ठा सेसं पि जणं विणासंति।। (8)

जो सम्यग्दर्शन से रहित है वह ज्ञान से भी एवं चरित्र से भी रहित है। दर्शन भ्रष्ट महाभ्रष्ट है। जो स्वयं भ्रष्ट है वह दूसरे को भी भ्रष्ट करते हैं। जो स्वयं मिथ्यादृष्टि हैं वह दूसरों को भी मिथ्यादर्शन के उपदेश की प्रेरणा देते हैं जिससे अन्य लोग भी मिथ्यादर्शन का अनुसरण करके भ्रष्ट होते हैं।

जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ठी।
तह जिणदंसणभट्ठामूलविणट्ठा ण सिज्झंति।। (10)

जैसे वृक्ष का मूल नष्ट हो जाने से वृक्ष की शाखा-प्रशाखा की वृद्धि नहीं हो सकती है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन नष्ट होने से रत्नत्रय स्वरूपी वृक्ष भी नष्ट हो जाता है जिससे मोक्षरूप फल की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् मोक्ष नहीं मिलता।

सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान तथा चारित्र मोक्ष के लिए कारण न होने से वे दोनों जीव के लिए भार स्वरूप हैं। यथा-

शमबोधवृत्ततपसां पाषाणस्येव गौरवं पुसः।

पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम्।। (15) आत्मानुशासन

पुरुष के सम्यक्त्व से रहित शांति, ज्ञान, चारित्र और तप इनका महत्व पत्थर के भारीपन के समान व्यर्थ है। परन्तु वही उनका महत्व यदि सम्यक्त्व से सहित है जो वह मूल्यवान मणि के महत्व के समान पूजनीय है।

इसलिए भगवती आराधना में सम्यग्दर्शन की उपलब्धि विश्व की संपूर्ण उपलब्धि से भी श्रेष्ठ बताया है।

''समद्दंसण लंभो वरं खु तेलोक्क लंभादो।'' (भगवती आराधना 742)

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तीन लोक के ऐश्वर्य से भी श्रेष्ठ है।

नादंसणिस्य नाणं। नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स णत्थि मोक्खो। णत्थि अमोक्खस्स णिव्वाणं।।

(उत्तराध्ययन 28/30)

सम्यग्दर्शन के अभाव में ज्ञान प्राप्त नहीं होता, ज्ञान के अभाव में चारित्र के गुण नहीं होते, गुणों के अभाव में मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के अभाव में निर्वाण (शाश्वत-आत्मानंद) प्राप्त नहीं होता।

''नत्थि चरित्रं सम्मत्त विहूणं।'' (उत्तराध्ययन 28/29)

सम्यक्त्व (सत्य दृष्टि) के अभाव में चरित्र नहीं हो सकता।

(भाषा विज्ञान संबंधी शोधपूर्ण कविता)

फल मेरा नाम है

(व्यवहार से लेकर मोक्ष फल)

(चाल : पूछ मेरा क्या नाम रे.....)

फल मेरा नाम है, विविध मेरा काम है।
वृक्ष-फल से लेकर प्रतीक रूप में सर्वत्र काम है।। (1)

परिणाम रूप से मेरा प्रयोग, होता सुफल-कुफल है।
संसार से मोक्ष तक में, होता मेरा परिणाम है।। (2)

बीज से अंकुर वृक्ष व फूल, फूल से मेरा जन्म है।
मुझसे पुनः बीज बनता, ऐसा ही परिणाम है।। (3)

आम जामुन नारियल केला, संतरा सेवादि फल है।

धान, गेहूँ बाजरा मक्का, धनिया जीरादि रूप है।। (4)

मुझे खाकर जीवित रहते, मनुष्य-पशु-पक्षी कीट-पतंग।
मुझसे ही उत्पन्न होते मेवा, मसाला-तेल-औषध।। (5)

सुफल-कुफल-विषफल व रसाल-फल निरस-फल।
नानाफल व विविधफल, निरूफल आदि मेरे नामान्तर।। (6)

पाप व पुण्यफल धर्मफल व, कर्मफल व मोक्षफल।
परीक्षाफल, श्रमफल, भावफल, आदि भी मेरे नामान्तरे।। (7)

सबीज फल से बीज (होता), उत्पन्न बीज से वृक्ष व फल।
ऐसा ही अन्यान्य क्षेत्र में भी (चैनरियिकसन के फल)/श्रृंखलाबद्ध प्रतिफल।। (8)

संसारी जीवों के भाग्य-पुरुषार्थ, (अनादि से) श्रृंखलाबद्ध प्रतिफल।
जिससे संसारी जीव चतुर्गति (संसार) में लगाते चक्कर।। (9)

भव्य जीव आत्म पुरुषार्थ से, कर्मनाश से पाते मोक्षफल।
मोक्षफल ही परमफल, 'कनक' वर्णित फल-सुफल।। (10)

सीपुर, दिनांक 10.10.2016, मध्याह्न

कबूतर मेरा नाम है (मैं हूँ शांतिदूत)

(चाल : पूछ मेरा क्या नाम रे.....)

कबूतर मेरा नाम है, शांतिवाहक का काम है।
जन्मतः शाकाहारी, रात्रि भोजन का न काम है।। (1)

गुटरगू के संगीत द्वारा, सुनाता हूँ मैं शांतिगीत,
संदेश वाहक मैं मानव का, मंदिरों में मेरा निवास।। (2)

अनाज व कंकर मैं खाऊँ, कंकर तक को पचा जाऊँ।
मुझे मानव पालन करते, दाना-पानी भी मुझे देते।। (3)

मेरी प्रजाति मिलनसार, सामाजिकता में मेरा सरोकार।
लड़ाई-झगड़ा हम न करते, गुटरगू तान से नृत्य करते।। (4)

हमारे रंग विभिन्न होते, सफेद नीला छींटेदार।

सफेद रंग वाले हमको, शांतिदूत में प्रयोग करते।। (5)

मेरे दिमाग में जैविक चुंबक, जिससे मैं दिशाज्ञान करूँ।
इससे मैं यातायात करूँ, गंतव्य स्थल कभी न भूलूँ।। (6)

मेरा प्रयोग कुछ दुष्ट मानव, जासूसी आदि में करते।
ऐसे होते हैं दुष्ट मानव, साधनों का दुरुपयोग करते।। (7)

मेरी आँखें गोल व लाल, मेरे पंजे भी लाल-लाल।
मेरी छोटी चोंच होती, गाल फूलाकर लगाता चक्कर।। (8)

मेरे गुणों से (भी) सीखो मानव, जिससे बनोगे महामानव।
इसके कारण आचार्य कनक, मेरी आत्मकथा का लिखा काव्य।। (9)

सीपुर, दिनांक 12.10.2016, मध्याह्न 1.23

आचार्य कनकनन्दी गुरुवरांशी निवेदन (प्रार्थना)

सर्वप्रथम माझ्या गुरुवरांना (प.पू. आचार्य कनकनन्दी जी गुरुवर) माझा त्रिवार नमोस्तु!!!

मी सर्वप्रथम गुरुवरांना रामगढ येथे भेटली, मी अशीच सहजच तिथे उभी होते तर काय बघते गुरुवर आलेत व म्हणाले की तुमच्या राहण्याची व्यवस्था झाली का? मी आश्चर्याने बघून बोलले हो गुरुवर आणि त्याक्षणी मी विचारकरत राहले की काय गुरु (आचार्य गुरुवर) एवढे सहज, सरल व सहृदयी असतात आणि तो क्षण आजही माझ्या मनात बसलेला आहे। त्यानंतर मी पाडवा, खाखड़, कोल्यारी, उदयपूर, हल्दीघाटी इथे गुरुवरांच्यासंघात राहली। मी जेव्हा पण इथे राहली, मला सोडून जावयासच वाटत नव्हते व मी मनात हे सोचले की मला कथीही धमच्या मार्गावर जायची संधि मिळाली तर मी कनकनन्दी गुरुवरांच्या संघामध्येच जाईल आणि असी संधि मला ब्र. अजयजी, ब्र. श्रेणिकजी व, ब्र. श्रुतीजी यांनी सहजच दिली। त्याबद्दल मी त्यांची जीवनभर आभारी राहिल आणि त्याच्यापेक्षा मी आपली (गुरुवरांची) खूपच आभारी राहिल कारण माझ्या सारख्या छोटयाशा बुद्धी जीविला आपण आपल्या चरणामध्ये जागा दिली, गुरुवर माझी इच्छा आहे की आपणच माझे शिक्षागुरु, दीक्षागुरु व समाधिगुरु असावे। माझे गुरुवर शतायु नाहीतर दीर्घायु होवो ही प्रार्थना देवांच्या चरणी नेहमीच

करते व करत राहिल। माझी इच्छा तर अशी आहे गुरुवर की गुरुवरांनी मला लवकरात लवकर दीक्षा द्यावी व लवकरच समाधि होवून परत दुसरा जन्म घेवून लगेच परत गुरुवरांच्या चरणाशी बाल ब्रह्मचारी बनून (होवून) नेहमीसाढीच गुरुवरांच्या चरणाशी राहू। माझे गुरुवर 'कनकनन्दी जी' गुरुवर आहे याचा मला स्वाभिमान, गौरव, मान आहे आणि मी किती नशीबवान आहे की मी गुरुवरांची शिष्या आहे। गुरुवरांमध्ये आईसारखी माया आहे। वडिलांसारखी दया माया आहे। गुरुवरांच्या रूपात तर त्याचे वर्णन करायला शब्दच अपूरे वाटत आहे। गुरुवरांसारखे गुरुवर मला लाभले हे माझे पुण्यभाग्यच।

गुरुचरण चंचरिका
ब्र. संगीता

आध्यात्मिक गुरु आचार्य कनकनन्दी जी मेरे भाव व अनुभव में

(गुरु को लिखी पाती)

इस संसार की असारता देखकर गुरुवर मेरा मन बहुत विचलित हो गया और जोर-जोर से पुकारने लगा गुरुदेव! गुरुदेव! गुरुदेव! आप कहाँ है? मुझे आपकी बहुत आवश्यकता है। मुझे इस भूमण्डल के दुःख से बचाने वाले आप ही एकमात्र नजर आते हैं, मुझमें भी वो शक्ति है जिससे मैं भगवान्, सिद्ध बन सकती हूँ। लेकिन कुम्हार तो आप ही हैं।

मेरे अंतर मन से आवाज आई वर्षा मैं यही हूँ-तेरे अंदर ही बसा हूँ, जब तुम शांत रहती हो, सहनशील होती हो, क्षमावान् बनती हो, दयावान् बनती हो, सरल होती हो, नैतिक होती हो, अच्छे भाव करती हो, दान करती हो, अपने लक्ष्य को पाने के लिए श्रम करती हो, न जाने कितने स्वच्छ पवित्र भाव तुम्हारे अंदर है जो तुम अभी ठीक से पहचानती भी नहीं हो, लेकिन वो गुण तुममें है मैं जानता हूँ। तुम्हारा मन तुम्हारे भाव, तुम्हारी आत्मा जब इन सभी गुणों से सजी होती है तब मैं तुममें वास करता हूँ कदाचित् संभव है कि तुम पूरे समय इन गुणों में वास नहीं करती हो बस उस क्षण मैं चला जाता हूँ अब फैसला तुम्हारे हाथ में है कि तुम मेरे साथ कितनी देर रहना चाहती हो (अपने स्वभाविक स्वरूप में) और कितनी देर नहीं रहना

चाहती (अपने स्वभाव से दूर) फैसला तुम्हारे हाथ में है।

तुम्हें सारे अच्छे कामों के लिए ढेर सारा आशीर्वाद, साधुवाद, शुभ आशीष, Thank you अब तुम कुछ Persent समझ रही हो।

(गुरुदेव) आचार्य कनकनन्दी जी जब भी तुम मेरे द्वारा रचित गीताञ्जली के गीत गाओगी, गुन-गुनाओगी मुझे अपने (समीप) भीतर ही पाओगी।

गुरुदेव मेरी तो शुरू से ही यही इच्छा रही है (न जाने कितने भवों से) कि मैं आपके पास आपकी शिष्या बनकर रहूँ यह रास्ता आज सूझा है, मैं कोशिश करूँगी गुरुदेव की अपने आप को कभी आपसे दूर न करूँ अर्थात् अपने लक्ष्य से दूर न रहूँ मुझे आपके आशीर्वाद की आवश्यकता है। जो मुझे मालूम है आपने व श्रीसंघ ने दोनों हाथों से मुझ पर लुटाया है शायद मैं ही नहीं समझ पाई।

आपकी शिष्या-शुधात्म-वर्षा

ध्यान मेरा नाम है (ध्यान की आत्मकथा)

(ध्यान से बढ़ते है ज्ञान-समता-शांति-शक्ति)

(चाल : छोटी मेरा नाम रे....., जिया बेकरार है.....)

ध्यान मेरा नाम है, ज्ञान बढ़ाना काम है।
समता-शांति-शक्ति बढ़ाना, मेरा ही उत्तम काम है।। (स्थायी)

एकाग्रचित्त मेरा स्वरूप, इन्द्रियाँ व मन निरोध।
राग-द्वेष-मोह-काम (क्रोध) त्याग से, होता जाता हूँ समृद्ध।।

इन्द्रियों की चंचल वृत्ति जब, होती जाती है निवृत्त।
मन की भी चंचल वृत्तियाँ, होती जाती है निवृत्त।। (1)

यथा जलाशय में पत्थर डालने से, क्षुभित होती है जलराशि।
उससे उत्पन्न होती तरंगें, फैलकर क्षुभित करती जलराशि।।

उस जल में प्रतिबिंब स्पष्ट, नहीं हो पाता है प्रगट।
चंचल चित्त में तथाहि ज्ञान, नहीं हो पाता है प्रगट।। (2)

चंचल जल में यथा प्रतिबिंब, होता रहता है विकृत।
चंचल चित्त में (तथा) ज्ञान आदि, होते रहते हैं विकृत।।

यथा स्थिर जलराशि में, प्रतिबिंब होते स्पष्ट प्रगट।
तथाहि स्थिर-निर्मल चित्त में, ज्ञान आदि होते प्रगट।। (3)

ज्ञान आदि है आत्म-स्वभाव, सुप्त-गुप्त राग-द्वेषादि से।
राग-द्वेषादि के (यथा) योग्य अभाव से, प्रगट होते ज्ञानादि उस अंश में।।

शुक्ल ध्यान से होता केवलज्ञान, अनंतदर्शन सुख वीर्य।
उससे निम्न स्तर ध्यान से, (तद्नुकूल) प्रगट होते ज्ञानादि गुण।। (4)

दीक्षा लेते ही तीर्थंकर मुनि के, प्राप्त होते मनःपर्यय ज्ञान।
चउसठ ऋद्धियाँ प्रगट होती, ऐसी है मेरी शक्ति प्रबल।।

इससे विपरीत मेरा विकृत रूप, आर्त्तरौद्र ध्यान स्वरूप होता।
राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोधादि युक्त, आर्त्तरौद्र ध्यान रूप होता।। (5)

इसी से चित्त होता चंचल, जिससे पाप बंध होता प्रबल।
जिससे ज्ञान-समता-शांति, होते जाते हैं क्षीण से क्षीणतर।।

धर्म ध्यान से होता (है) चित्त शुभ, राग-द्वेषादि होते मंद।
दान-दया-सेवा-परोपकार सह, श्रावक-श्रमण के व्रत सहित।। (6)

धर्म ध्यान से होते आर्त्तरौद्र नाश, शुक्ल ध्यान क्रमशः होता विकास।
यह मेरा संक्षिप्त स्वरूप, 'कनकनन्दी' ने बनाया काव्य।। (7)

ध्यान मेरा नाम है, ज्ञान बढ़ाना काम है।
समता-शांति-शक्ति बढ़ाना, मेरा ही उत्तम काम है।।

सीपुर, दिनांक 13.10.2016, प्रातः 8.43
(यह कविता विदेशी वैज्ञानिक चैनलों से भी प्रभावित है।)

संदर्भ-

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठतः।
त्यजेत्तान्यापि संप्राप्य परमं परमात्मनः।। (84)

इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव पाँचों पापों को त्याग करके अहिंसा आदि अणुव्रतों तथा महाव्रतों में चर्या करे यानी-अणुव्रत महाव्रतों का आचरण करे और आत्मा के परम उत्कृष्ट पद को पाकर उन व्रतों को भी छोड़ देवे।

अव्रती व्रतमादाय व्रती ज्ञान परायणः।

परमात्मज्ञानसंपन्नः स्वयमेव परो भवेत्।। (86)

अव्रती व्रती रहित मनुष्य प्रतिज्ञा के साथ व्रतों का आचरण करे, अणुव्रती श्रावक तथा महाव्रती मुनि बने और व्रती मनुष्य आत्मज्ञान प्राप्त करने में तत्पर बनें। उत्कृष्ट आत्मज्ञानी अपने आप ही उत्कृष्ट हो जाता है।

ध्यान का कार्य एवं उसके लिए प्रेरणा

दुविहं पि मुक्खेहेउ झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।

तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह।। (47)

Because by the rule a sage gets both the (Vyavahara and Nischaya) cause of liberation by meditation, therefore (all of) you practice meditation with careful mind.

मुनि, ध्यान के करने से जो नियम से निश्चय और व्यवहार इन दोनों स्वरूप मोक्षमार्ग को पाता है। इस कारण से हे भव्यों! तुम चित्त को एकाग्र करके ध्यान का अभ्यास करो।

आचार्यश्री गाथा नंबर 46 तक निश्चय एवं व्यवहार चारित्र का वर्णन करके दोनों चारित्र को साधने वाले ध्यान का वर्णन कर रहे हैं। उपयोग की स्थिरता को 'ध्यान' कहते हैं। ध्यान सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की एकता से होता है। समाधि भक्ति के दंडक में कहा भी है-

''रयणत्तयपरुवपरमप्पज्झाणलक्खणं समाहिभत्ति।''

रत्नत्रयात्मक परमात्मा का ध्यान रूप लक्षण है समाधि भक्ति। ध्यान, योग, समाधि, आत्मलीनता आदि ध्यान के पर्यायवाची नाम हैं। ऐसे ध्यान से व्यवहार एवं निश्चय रत्नत्रय की सिद्धि होती है। क्योंकि ध्यान से शुभ एवं शुद्ध के माध्यम से आत्मा में एकाग्रता, लीनता, समता बढ़ती है जिससे व्यवहार चारित्र एवं निश्चय चारित्र की सिद्धि होती है। इसलिये आचार्यश्री प्रेरणा देकर कहते हैं कि हे भव्य! ऐसे ध्यान को अवश्य करो जिससे दोनों चारित्र की सिद्धि हो। वृहद् प्रतिक्रमण में भी महावीर भगवान् ने गौतम गणधर से ध्यान को समस्त सार में सार कहा है यथा-

जो सारो सव्वसारेसु, सो सारो एस गोयम।

सारं झाणंति णामे ण, सव्वं बुद्धेहिं देसिदं।। (8) धर्म ध्यान प्रकाश पृ. 305

जगदन्तवर्ती सब वस्तुओं में सार व्रत है उनमें भी हे गौतम! ध्यान ही श्रेष्ठ सार है क्योंकि ''सारं ध्यान'' इस नाम से सब बुद्धों सर्वज्ञों ने ध्यान को सार कहा है।

पर साधनमान्मातं ध्यानं मोक्षस्य साधने। (5)

यत्कर्मक्षपणे साध्ये साधनं परमं तपः।

तत्ते ध्यानाहयं सम्यगनुशास्मि यथाश्रुतम्।। (7 आदि पुराण)

मोक्ष के साधनों में ही सबसे उत्तम साधन माना गया है जो कर्मों के क्षय करने के रूप कार्य का मुख्य साधन है। ऐसे ध्यान नाम के उत्कृष्ट तप का मैं (गौतम) तुम्हारे (श्रेणिक) के लिए आगम के अनुसार अच्छी तरह उपदेश देता हूँ।

भवक्लेशाविनाशाय विप ज्ञानसुधारसम्।

कुरु जन्माब्धिमत्येतुं ध्यानपोतावलंबनम्।। (12 ज्ञानार्णव)

हे भव्य! तू इस संसार के क्लेश को नष्ट करने के लिए ज्ञानरूप अमृत रस का पान कर तथा उक्त संसार रूप समुद्र को लाँघने के लिए ध्यान रूप जहाज का आश्रय ले।

मोक्षः कर्मक्षयादेव स सम्यग्ज्ञानजः स्मृतः।

ध्यानबीजं मतं तद्धित्समातद्वितमात्मनः।। (13)

मोक्ष कर्म के क्षय से ही आविर्भूत होता है और वह कर्म का क्षय सम्यग्ज्ञान से उत्पन्न होने वाला माना गया है। उस सम्यग्ज्ञान का बीज ध्यान है इसीलिए आत्मा का हित करने वाला वह ध्यान ही है।

अपास्य कल्पनाजालं मुनिभिर्मोक्षमिच्छुभिः।

प्रशमैकपरैर्नित्यं ध्यानमेवावलम्बितम्।। (14)

मोक्ष की इच्छा करने वाले मुनियों ने समस्त कल्पनाओं के समूह को छोड़कर एकमात्र प्रशम में-कषायोपशमन में-तत्पर होते हुए निरंतर उस ध्यान का ही आश्रय लिया है।

महर्षि पंतजली ने ध्यान की विशेष उपलब्धि के जो प्रतिपादन किये हैं उसमें से कुछ महत्वपूर्ण अंश निम्न पंक्तियों में उद्धृत कर रहे हैं-

''परिणामत्रयसंयमादतीतनागतज्ञानम्।'' (16 विभूतिपाद पृ. 332)

धर्म, लक्षण तथा अवस्था रूप तीनों परिणामों में धारणा, ध्यान एवं समाधि रूप संयम करने से (योगियों) को अतीत और अनागत पदार्थ विषयक साक्षात्कारात्मक ज्ञान होता है।

प्रशान्तमनसः ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।

उपैति शान्त रजसं ब्रह्मभूतकल्मषम्।। (27)

जिसका मन भलीभाँति शांत हुआ है, जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युन्जननेव सदात्मानं योगी विगत कल्मषः।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यनतं सुखमश्नुते।। (28)

आत्मा के साथ निरंतर अनुसंधान करते हुए पापरहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्म प्राप्ति रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

सर्वभूतस्थामात्मनां सर्वभुतानि चात्मनि।

ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः।। (29)

सर्वत्र समभाव रखने वाला योगी अपने को सब भूतों में और सब भूतों को अपने में देखता है।

जह चिरसंचिदमिंधणमणलो पावणाहदो लहुं डहदि।

तह कम्मिधणमहियं खणेण क्षाणाणलो दहइ।। (18)

जिस प्रकार चिरसंचित ईंधन को पवन से आहत अग्नि शीघ्र ही जला देती है, उसी प्रकार ध्यान रूपी अग्नि अधिक कर्मरूपी ईंधन को क्षणमात्र में जला देती है।

जो खविदमोहकलसु विसयविरत्तो मणो णिरुं भित्ता।

सभवट्ठिदो सधवे सो पावइ णिव्वुदीसोक्खं।।

जो दर्शन मोह और चारित्र मोह को नष्ट कर विषयों से विरक्त होता हुआ मन को रोककर आत्म स्वभाव में स्थित होता है वह मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोग परिकम्मो।

तस्य सुहासुहहणो क्षाणमओ जायदे अगणी।।

जिसके राग, द्वेष, मोह और योग परिकर्म (योग परिणति) नहीं है उसके शुभाशुभ (पुण्य-पाप) को जलाने वाली ध्यानमय अग्नि उत्पन्न होती है।

दंसणणाणसमग्गं क्षाणं णो अण्णा दव्वसंसत्तं।

जायदि णिज्जरहेदू सभावसवहिदस्स साहुस्स।।

शुद्ध स्वभाव सहित साधु का दर्शन ज्ञान से परिपूर्ण, ध्यान, निर्जरा का कारण होता है। अन्य द्रव्यों से संसक्त वह निर्जरा का कारण नहीं होता। (तिलोय)

ध्याता का स्वरूप

मा मुज्झह मारज्जह मा दूस्सह इट्ठणिट्ठअट्ठेसु।
थिरमिच्छहि जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए।। (48)

If you wish to have your mind fixed in order to succeed in various kinds of meditation, do not be deluded by of attached to be beneficial object and do not be averse to harmful objects.

हे भव्यजनों! यदि तुम नाना प्रकार के ध्यान अथवा विकल्प रहित ध्यान की सिद्धि के लिए चित्त को स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट तथा अनिष्ट रूप जो इन्द्रियों के विषय हैं उनमें राग-द्वेष और मोह को मत करो।

आचार्यश्री ने इस गाथा में ध्याता का स्वरूप तथा प्रकारांतर में ध्यान के कारणों का आध्यात्मिक, रहस्यपूर्ण, संक्षिप्त परंतु सारगर्भित वर्णन प्रस्तुत किया है। ध्यान के मुख्य अंग है, 1. ध्यान, 2. ध्याता, 3. ध्यान के कारण, 4. ध्येय, 5. ध्यान के फल।

1. ध्यान–उपयोग, ज्ञान, चिंता, मन की स्थिरता ध्यान है।

2. ध्याता–रत्नत्रय से युक्त साम्यावस्था को धारण करने ध्यान करने वाला ध्याता है।

3. ध्यान के कारण–रत्नत्रय, वैराग्य, परिग्रह से शून्यता, मनोन्द्रिय के ऊपर विजय समतादि ध्यान के कारण हैं।

4. ध्येय–विश्व के प्रत्येक जड़-चेतनात्मक शुद्धाशुद्ध द्रव्य ध्येय होते हुए भी स्वनिर्मल परमात्मा ही अंतिम उत्कृष्ट ध्येय है।

5. ध्यान के फल–संवर, निर्जरा एवं मोक्ष ध्यान के फल हैं।

गाथा नंबर 47 में ध्यान के कार्य का वर्णन है तो गाथा नंबर 48 में ध्याता का स्वरूप (समता धारक) एवं ध्यान के कारणों (मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअट्ठेसु) का दिग्दर्शन है। गाथा नंबर 49 से 54 तक में पदस्थ ध्यान का वर्णन है। गाथा 55 में ध्येय के साथ-साथ ध्याता, ध्यान आदि का संक्षिप्त वर्णन है। गाथा 56 में निश्चय ध्यान के लक्षण का वर्णन है तो गाथा 57 में ध्याता तथा ध्यान के कारणों का वर्णन है। इस प्रकार गाथा 47 से 57 तक ध्यान का बहुत ही संक्षिप्त परंतु सांगोपांग वर्णन है। यह वर्णन ''गागर'' में सागर नहीं किन्तु बिन्दु में सिन्धु उक्ति को चरितार्थ करता है।

''मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह'' समस्त मोह, राग, द्वेष से उत्पन्न हुए विकल्पों समूहों से रहित जो निज परमात्मा स्वरूप की भावना से उत्पन्न हुआ एक परमानंद रूप सुखामृतरस से उत्पन्न हुई और उसी परमात्मा के सुख के आस्वाद में तत्पर अर्थात् मग्न हुई जो परम कला और परम संवित्ति आत्म (स्वरूप का अनुभव) है, उसमें स्थिर होकर हे भव्य जीवों! मोह, राग, द्वेष को मत करो। किन में मोह, राग, द्वेष मत करो? 'इट्ठणिट्ठअट्ठेसु' माला, स्त्री, चंदन, ताम्बूल आदि रूप इन्द्रियों के इष्ट विषयों में व सर्पविष, काँटा, शत्रु तथा रोग आदि इन्द्रियों के अनिष्ट विषयों में राग-द्वेष मत करो, ''थिरमिच्छहि जइ चित्तं'' यदि उसी परमात्मा के अनुभव में तुम निश्चल चित्त को चाहते हो। किस लिये स्थिरचित्त को चाहते हो? ''चित्तझाणप्पसिद्धिए'' विचित्र अर्थात् नाना प्रकार का जो ध्यान है उसकी सिद्धि के लिए अथवा दूर हो गया है चित्त अर्थात् चित्त से उत्पन्न होने वाला शुभ-अशुभ विकल्पों का समूह दूर हो गया है सो विचित्र ध्यान है उस विचित्र ध्यान की सिद्धि के लिए।

अंकुर उत्पत्ति के लिए योग्य जल-वायु-पृथ्वी एवं सूर्य रश्मि आदि की आवश्यकता पड़ती है परंतु योग्य बीज के अभाव से बाह्य जलवायु आदि के संयोग से भी अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता। उसी प्रकार ध्यान के लिए योग्य बाह्य देशादि की आवश्यकता है तो भी ध्यान के अंतरंग एवं मुख्य कारण मन की एकाग्रता नहीं है तो ध्यान रूपी अंकुर उतपन्न नहीं हो सकता है। अतः ध्यान का महत्वपूर्ण प्रधान एवं प्रथम साधन मन की साम्य-अवस्था है। मन की साम्य-अवस्था के लिए राग-द्वेषात्मक भावात्मक तरंग का उपशमन अति आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। आचार्य पूज्यपाद देवनंदी ने समाधि शतक में साम्यावस्था एवं आत्मदर्शन के लिए राग-द्वेषात्मक कल्लोल का अभाव होना मुख्य कारण कहा है-

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम्।

स पश्यत्यात्मनस्तत्वं तत्तत्त्वं नेतरो जनः।। (35) पृ.45

जिस पुरुष का मन रूपी जल राग, द्वेष, मोह, मद, क्रोध, लोभ, माया आदि की लहरों से चंचल नहीं है, वह मनुष्य अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप को अपने निर्मल मन में देख लेता है। अन्य मनुष्य उस आत्मा के स्वरूप को नहीं देख पाता।

स्वच्छ स्थिर जल में देखने वाले का मुख दर्पण के सदृश्य प्रतिबिंबित हो जाता है। परंतु वायु के वहन से या कोई घन वस्तु उस जलाशय में निक्षेप (डालने)

से जल में तरंगें उठती हैं। जिससे जल क्षुभित हो जाता है। क्षुभित जल में मुख स्पष्ट प्रतिबिंबित नहीं होता है। यदि कदाचित् प्रतिबिंबित भी होगा तो प्रतिबिंबित मुख के अनुरूप न होकर वक्र रूप, अतदाकार अस्पष्ट दिखाई देगा। उसी प्रकार मन रूपी जल जब साम्यावस्था को प्राप्त करके स्थिर रहता है, तब ध्यान साधन, आत्म दर्शन होता है। परंतु जब राग-द्वेषात्मक प्रचंड वायु-वेग से मन रूपी जल में संकल्प-विकल्पात्मक, आकर्षण-विकर्षणात्मक, कल्लोलें कल्लोलित होती हैं उसी समय मन रूपी जल क्षुभित हो जाता है। उस समय मन में एकाग्रता के अभाव से ध्यान, साधन आत्म दर्शन नहीं हो सकता है। इसीलिए मन की स्थिरता के लिए राग-द्वेषात्मक, आकर्षण-विकर्षणात्मक, भावों का त्याग करना परम आवश्यक है।

उत्साहन्निश्चयाद्धैर्यात्सन्तोषतत्व निश्चयात्।

मुनेर्जनपद त्यागात् षड्भिर्योग प्रसिध्यति।। (ज्ञान)

उत्साह से, निश्चय से, धैर्य से, संतोष से, तत्त्व दर्शन से, देश त्याग से योग की सिद्धि होती है। कोई इस प्रकार कहता है-

एतान्येवाहुः केचिच्च मनः स्थैर्यार्य शुद्धये।

तस्मिन् स्थिरीकृते साक्षात्स्वार्थ सिद्धि ध्रुव भवेत्।। (2)

कोई ऐसा कहता है कि ये यमादिक कहे हैं सो मन को स्थिर करने के लिए तथा मन की शुद्धता के लिए कहे हैं क्योंकि मन के स्थिर होने से साक्षात् प्रसिद्धि होती है।

यमादिषु कृताभ्यासो निःसंगो निर्ममो मुनिः।

रागादि क्लेश निर्मुक्तं करोति स्ववश मनः।। (3)

जिसे यमादिक में अभ्यास किया है, परिग्रह और ममता से रहित है ऐसा मुनि ही अपने मन को रागादिक से निर्मुक्त तथा अपने वश में करता है।

अष्टावंगानि योगस्य यान्युक्तान्यार्य सूरिभिः।

चित्त प्रसति मार्गेण बीजं स्युस्तानि मुक्यते।। (4)

योग के 8 अंग पूर्वाचार्यों ने कहे हैं वे चित्त की प्रसन्नता के मार्ग से मुक्ति के लिए बीजभूत (कारण) होते हैं, अन्य प्रकार से नहीं होते हुए इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने कहा है-

हिंसादि पंच महापाप सेवन से, पंचेन्द्रिय जनित विषय शक्ति, भोग अनुभव

से, असत् अनैतिक आचार-विचार से, संसार-शरीर-भोगा-शक्ति से, अविद्या, अज्ञान से मन क्षुभित होकर, मलिन होकर ध्यान साधन नहीं हो सकता है इसलिए ध्यान विशेषज्ञ आचार्य ध्यान साधन के कारण बताते हुए कहते हैं कि-

वैराग्यं तत्त्वविज्ञानं नैर्ग्रथं वशचित्तता।

परिषह जयश्चेति पंच ते ध्यान हेतवः।।

1. वैराग्य, 2. तत्त्व का परिज्ञान, 3. अंतरंग-बहिरंग ग्रंथी शून्यता, 4. मन के ऊपर विजय, 5. परिषह, उपसर्ग कष्टादि को समता रूप में सहन करता है पाँच ध्यान के लिए कारण हैं।

ध्यान तप का लक्षण

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमन्तर्मुहूर्तात्। (27)

ध्यानं Concentration is confining one's thought to one particular object. In a man with a high class consitiuation of bone, nerves etc. i.e. the first 3 out of the 6 संहनन it lasts at the most for i.e. upto one अंतर्मुहूर्त i.e. 48 minutes minus one समय।

उत्तम संहनन वाले का एक विषय में चित्तवृत्ति का रोकना ध्यान है जो अंतर्मुहूर्त काल तक होता है।

आदि के तीन संहनन उत्तम कहलाते हैं, अर्थात् वज्रवृषभ नाराच, वज्रनाराच और नाराच, ये तीन संहनन उत्तम कहलाते हैं। इन तीनों संहननों को उत्तम क्यों कहते हैं? ध्यानादि में विशेष सहायक कारण होने से इनको उत्तम कहते है। इनमें मोक्ष का कारण तो एक आदि का वज्रवृषभ नाराच संहनन ही होता है, परन्तु ध्यान के कारण तो आदि के तीनों संहनन होते हैं। उत्तम संहनन जिसके है वह उत्तम संहनन है, उत्तम संहनन वाले के ध्यान अंतर्मुहूर्त तक होता है।

चिन्ता–अन्तःकरण का व्यापार है। अर्थात् पदार्थों में अन्तःकरण की वृत्ति-व्यापार को चिन्ता कहते हैं।

अनियत क्रियार्थ का नियत क्रिया अकर्तृत्व से अवस्थान होना निरोध है। गमन, भोजन, शयन और अध्ययन आदि विविध क्रियाओं में अनियम रूप से भटकने वाली चित्तवृत्ति को एक क्रिया में रोक देना निरोध है, ऐसा जाना जाता है। एक 'अग्र' मुख जिसके है वह एकाग्र है, उस एक अग्र में चिंता का निरोध

एकाग्रचिंता निरोध है।

प्रश्न–यह एकाग्रत्व से चिंता निरोध कैसे होता है?

उत्तर–दीपक की शिखा के समान वीर्यविशेष के सामर्थ्य से चित्तवृत्ति का एक स्थान में निरोध हो जाता है। जैसे-निराबाध (वायु रहित) प्रदेश में प्रज्ज्वलित दीपशिखा परिस्पन्दन नहीं करती है, स्थिर रहती है, उसी प्रकार निराकुल स्थान में (एकलक्ष्य में) शक्ति विशेष से अवरूध्यमान (रोकी गई) चित्तवृत्ति, बिना व्याक्षेप के एकाग्रता से स्थिर रहती है, अन्यत्र नहीं भटकती।

'एकं अग्रं' एक द्रव्य परमाणु या भाव परमाणु या अन्य किसी अर्थ में चिन्ता को (चित्तवृत्ति को) नियमित करना, केन्द्रित करना, स्थिर करना, एकाग्र चिन्तानिरोध है।

मुहूर्त का परिमाण 48 मिनट है। मुहूर्त काल विशेषवाची है, उसका परिमाण 48 मिनट पूर्व में कह दिया गया है।

इसमें उत्तम संहनन का कथन, अन्य संहनन से इतने काल तक स्थिर रहने की असमर्थता प्रगट करने के लिए है। अर्थात् उत्तम संहनन वाला जीव ही इतने समय (अंतर्मुहूर्त) तक एक पदार्थ में चित्तवृत्ति का निरोध कर सकता हैं, अन्य संहनन वाले नहीं। इस बात की सूचना करने के लिए सूत्र में उत्तम संहनन शब्द का प्रयोग किया है।

'एकाग्र' शब्द व्यग्रता, चंचलता की निवृत्ति के लिए है, क्योंकि ज्ञान व्यग्र होता है और ध्यान एकाग्र, अतः ध्यान की एकाग्रता को प्रकट करने के लिए एकाग्र शब्द दिया गया है।

ज्ञानात्मक चिन्ता की पर्याय विशेष में ध्यान शब्द का प्रयोग होता है, इस बात की सूचना करने के लिए 'चिन्तानिरोध' ध्यान का विशेषण किया गया है। चिन्ता ज्ञान की पर्याय है। उस ज्ञान की व्यग्रता हट जाना ही ध्यान है।

मुहूर्त वचन आहारादि की व्यावृत्ति के लिए है। आहारादि का भाव आ जाने पर चित्तवृत्ति ध्यान से च्युत हो जाती है अतः उस आहारादि काल की निवृत्ति के लिए मुहूर्त शब्द कहा गया है अथवा, ध्यान का उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त है। इसके बाद एक ही ध्यान लगातार नहीं रह सकता।

चिन्तानिरोध तुच्छ अभाव (सर्वथा भाव) रूप नहीं है किन्तु किसी पर्याय की

अपेक्षा भावान्तर रूप इष्ट है। अन्य चिन्ताओं के अभाव की अपेक्षा ध्यान असत् होकर भी विवक्षित लक्ष्य के सद्भाव की अपेक्षा सत् स्वरूप है। अर्थात् विवक्षित अर्थ के विषय अवगम स्वभाव की सामर्थ्य की अपेक्षा ध्यान अस्ति रूप है।

ध्यान के भेद

आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि। (28)

It is of 4 kinds :

1. **आर्तध्यान**–Painful or meditation, monomania.

2. **रौद्रध्यान**–Wicked concentration on unrighteous gain etc.

3. **धर्मध्यान**–Righteous concentration.

4. **शुक्लध्यान**–Pure concentration i.e. concentration on the soul.

आर्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल से ध्यान के चार भेद हैं।

1. **आर्तध्यान**–ऋतु, दुःख और अर्दन को आर्ति कहते हैं और आर्ति से होने वाला ध्यान आर्तध्यान है।

2. **रौद्रध्यान**–रूलाने वाले को रूद्र या क्रूर कहते हैं, उस रूद्र का कर्म या भाव रौद्रध्यान कहलाता है।

3. **धर्म्यध्यान**–धर्म से युक्त ध्यान धर्म्यध्यान कहलाता है।

4. **शुक्लध्यान**–शुचि गुण के योग से शुक्ल होता है। जैसे-मैल हट जाने से शुचि गुण के योग से वस्त्र शुक्ल कहलाता है, अर्थात् वस्त्र शुचि होकर शुक्ल (श्वेत वर्ण उज्ज्वल) हो जाता है, उसी प्रकार गुणों के साधर्म्य से निर्मल गुण रूप आत्म परिणति भी शुक्ल कहलाती है। ये चारों प्रकार के ध्यान प्रशस्त और अप्रशस्त के भेद से दो प्रकार के है-पाप के कारणभूत ध्यान अप्रशस्त है और कर्म को दहन करने के सामर्थ्य से युक्त ध्यान प्रशस्त कहलाते है; अर्थात् जिससे कर्मों का नाश होता है, वह प्रशस्त ध्यान है। आदि के दो ध्यान (आर्त्त, रौद्र) अप्रशस्त हैं और धर्म्य और शुक्ल ध्यान प्रशस्त हैं।

परे मोक्षहेतु। (29)

The last two धर्मध्यान, शुक्लध्यान are the causes of liberation. The other two आर्तध्यान, रौद्रध्यान are the causes of mundane bondage.

उनमें से पर अर्थात् अंत के दो ध्यान मोक्ष के हेतु हैं। 'परे मोक्षहेतु' धर्मध्यान और शुक्लध्यान मोक्ष के कारण है, ऐसा कहने पर परिशेष न्याय से पूर्व आर्त्त, रौद्रध्यान संसार के कारण हैं, यह जाना जाता है क्योंकि तीसरे साध्य का अभाव है अर्थात् संसार और मोक्ष को छोड़कर तीसरा कोई भेद या अवस्था नहीं हैं।

इस सूत्र में कहा गया है कि धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान दोनों मोक्ष के लिए कारण है। एकाग्रचिंता निरोध ध्यान होने के कारण जब तक चिंता (भावमन) रहती है तब तक ध्यान होता है। भावमन का अभाव 12वें गुणस्थान के अंत तक हो जाता है इसलिए वस्तुतः 13वें 14वें गुणस्थान में उपचार से शुक्लध्यान है और सिद्ध अवस्था में उपचार से भी ध्यान मात्र का भी अभाव है। इससे सिद्ध होता है कि ध्यान आत्मा का स्वभाव नहीं है परन्तु मोक्ष मार्ग के लिए कारण है। कुछ आधुनिक एकांतवादी आध्यात्मिक शास्त्र एवं शुद्ध नय का बहाना (आड़) लेकर शुक्लध्यान को तो मोक्ष का कारण मानते हैं और धर्मध्यान को संसार का कारण मानते हैं किन्तु सूत्रकार के सूत्रों से स्वयं इस मत का खण्डन हो जाता है। शुभध्यान शुभ परिणाम से होता हैं तथा शुभ परिणाम सम्यग्दर्शन पूर्वक होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सहित एवं देशचारित्र एवं सकल चारित्रपूर्वक जो शुभ क्रिया या शुभध्यान होता है वे सब पुण्यबंध के साथ-साथ पाप के संवर निर्जरा का कारण बनते हैं। जो पुण्यबंध होता है एवं शुभभाव व ध्यान होता है वह भी मोक्ष के लिए परम्परा से कारणभूत बनते हैं। शुभभाव एवं शुभध्यान भी शुद्धभाव एवं शुक्लध्यान के लिए कारण बनते हैं।

दिगम्बर जैनागम के श्रेष्ठतम सिद्धांतशास्त्र जयधवल में वीरसेन स्वामी ने उपरोक्त सिद्धांत का प्रतिपादन निम्न प्रकार से किये हैं-

सुह परिणाम पणालीए विणा एक्क सराहेणेव सुविसुद्ध परिणामेण परिणमनासंभवादो त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसब्भावो।

शुभ परिणाम की प्रणाली के बिना एक बार में ही सुविसुद्ध परिणाम रूप से परिणमन असंभव है। इस प्रकार इस अर्थ का सद्भाव यहाँ पर स्वीकार किया गया है। परिणामों विसुद्धो पुव्वं पि अंतोमुहुत्तप्पहुडि विसुज्झमाणो आगदो अणंतगुणाए विसोहीए।

परिणाम विशुद्ध होता है तथा अंतर्मुहूर्त पहले से ही अनंतगुणी विशुद्धि के द्वारा विशुद्ध होता हुआ आया हैं।

चारित्र मोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ करने वाले जीव का परिणाम विशुद्ध ही

होता है। इस प्रकार इस सूत्र वचन से अशुभ परिणामों का व्युदास करके शुभ-शुद्ध परिणाम ही यहाँ पर सम्भव है, इस बात का ज्ञान कराया गया है। केवल इसे अधः प्रवृत्त करके अंतिम समय में ही इसका विशुद्ध परिणाम हो गया है, किन्तु अधः प्रवृत्तकरण के प्रारंभ करने के पूर्व ही नीचे अंतर्मुहूर्त से लेकर क्षपक श्रेणी के योग्य विशुद्धि का अवलंबन लेकर प्रत्येक समय में अनंतगुणी विशुद्धि से विशुद्ध होता हुआ ही आया है।

शुभ परिणाम शुद्ध परिणाम के कारण होने से बिना शुभ परिणाम के शुद्ध परिणाम नहीं हो सकते हैं, क्योंकि कारण के बिना कार्य का संपादन होना त्रिकाल, तीन लोक में असंभव है। इसलिए भी शुभ परिणाम मोक्ष मार्ग में प्राथमिक साधक अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक के जीवों के लिए हेय नहीं परन्तु उपादेय है। उत्कृष्ट शुभ परिणाम चतुर्थ गुणस्थान में नहीं होता है किन्तु सातवें गुणस्थान में ही होता है। बिना निर्ग्रंथ मुनि लिंग धारण किये छटवाँ-सातवाँ गुणस्थान नहीं हो सकता है। अतः उत्कृष्ट शुभ परिणामों की प्राप्ति के लिए भी निर्ग्रंथ मुनि लिंग की आवश्यकता है। केवल शुभ परिणाम शुद्ध परिणाम के लिए ही कारण नहीं है किन्तु संवर-निर्जरा के लिए भी कारण है। इतना ही नहीं, शुभ एवं शुद्ध परिणाम के बिना कर्म का क्षय नहीं हो सकता है।

सुह सुद्ध परिणामेहि कम्मक्खया भावे तक्खयाणुववत्तीदो।

शुभ और शुद्ध परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जाय तो फिर कर्मों का क्षय हो ही नहीं सकता है।

आत्मानुशासन में गुणभद्राचार्य ने कहा भी है-

अशुभाच्छुभमायात् शुद्धः स्यादयमागतम्।
रवेरप्राप्तसंध्यस्य तमसो न समुद्गमः।।(122)

Emerging from evil into good, this (Soul) reaches, with the help of the scriptures, (the Stage of) pure thought activity. Darkness (of ignorance) cannot exist in presence of the pre-evening from sum (of knowledge).

यह आराधक भव्य जीव आगम ज्ञान के प्रभाव से अशुभ स्वरूप असंयम अवस्था से शुभ रूप संयम अवस्था को प्राप्त हुआ समस्त कर्ममल से रहित होकर शुद्ध हो जाता है। ठीक है-सूर्य जब तक संध्या (प्रभातकाल) को नहीं प्राप्त होता हैं

तब तक वह अंधकार को नष्ट नहीं करता है।

विधुततमसो रागस्तपः श्रुतनिबंधनः।

संध्याराग इवार्कस्य जन्तोरभ्युदयाय सः।।(123)

The red tinge (i.e. attachment), of a person whose ignorance is dispelled, supports qusterity and scriptrial knowledge; and like the red dawn of the rising sun is for the prosperity of all beings.

अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट कर देने वाले प्राणी के जो तप एवं शास्त्र विषयक अनुराग होता हैं वह सूर्य की प्रभातकालीन लालिमा के समान उसके अभ्युदय (अभिवृद्धि) के लिए होता है।

आर्तध्यान का लक्षण एवं भेद

आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः। (30)

आर्तध्यान Painful concentration of monomonia is of 4 kinds. The first kind of monomonia is अनिष्ट संयोगज onconnection with an unpleasing object to repeatedly think of separation from it.

अमनोज्ञ पदार्थ के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिए चिंता-सातत्य का होना प्रथम आर्तध्यान है।

बाधाकारी विष, कण्टक, शत्रु, शास्त्रादि अप्रिय वस्तुएँ अमनोज्ञ कहलाती हैं। जो विष, कण्टक, शत्रु आदि अप्रिय है, उसे बाधा की कारण होने से अमनोज्ञ कहते हैं।

अर्थांतर (दूसरे पदार्थ) की ओर मन को न जाने देकर उसे बार-बार एक ही पदार्थ में लगाये रखना समन्वाहार है। स्मृति का समन्वाहार स्मृति समन्वाहार है। बाधाकारी विष, कण्टक आदि अप्रिय वस्तु का संयोग मिलने पर 'ये मुझसे दूर कैसे हों, इस प्रकार का संकल्प चिंता का प्रबंध आर्तध्यान कहा जाता है।

अनादिकालीन मोह एवं अविद्या आदि कुसंस्कार के कारण जीव दूसरे पदार्थों में इष्टानिष्ट आरोप कर लेता है। अनिष्ट संयोग होने पर उनको दूर करने के लिए बार-बार विचार करता है। उसकी ही योजना बनाता है। जब तक अनिष्ट संयोग होता है उसके मन में अनेक संकल्प विकल्प उठते हैं जिससे मन में विकार उत्पन्न होता है एवं विभिन्न मानसिक तनाव से ग्रस्त हो जाता है। इससे अनेक शारीरिक-मानसिक रोग के साथ-साथ पापबंध भी होता है, जैसे-दुर्योधन पाण्डवों को अनिष्ट जानता था

और उनको राज्य से निकालने के लिए, मारने के लिए योजना बनाता था। इतना ही नहीं इस अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान के कारण ही महाभारत जैसे जन-धन संहारक महायुद्ध हुआ। परिवार में भी दुष्टा बहु, दुष्टा सास, दुष्टा भाई-बंधु के कारण इस प्रकार का अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान होता है कलह होती है एवं संयुक्त परिवार टुकड़े-टुकड़े में बिखर जाता है। इस ध्यान का वर्णन ज्ञानार्णव में शुभचन्द्राचार्य ने निम्न प्रकार किया है-

ज्वलनवनविषास्त्रव्यालशार्दूलदैत्यैः।
स्थल जलबिल सत्त्वैर्दुर्जनाराति भूपैः।
स्वजन धनशरीर ध्वंसिभिस्तैरनिष्टै-
र्भवति यदिह योगादाद्यमार्तं तदेतत्।।(23) (पृ.416, अ.23)

अपने कुटुम्बी जन, धन-संपत्ति ओर शरीर को नष्ट करने वाले अग्नि, अरण्य (अथवा जल) विष, शस्त्र, सर्प, सिंह व दैत्य और स्थल के प्राणी, जल के प्राणी एवं बिल के प्राणी (सर्पादि) और दुर्जन, शत्रु व राजा इत्यादि; इन अनिष्ट पदार्थों के सम्बन्ध से जो यहाँ संक्लेश और चिंता होती है उसका नाम प्रथम आर्तध्यान है।

तथा चरस्थिरैर्भावैरनेकैः समुपस्थितैः।
अनिष्टैर्यन्मनः क्लिष्टं स्यादार्तं तत्प्रकीर्तितम्।।(24)

इसके अतिरिक्त चर (चलते-फिरते) और स्थिर अनेक अनिष्ट पदार्थों के उपस्थित होने पर जो मन में क्लेश उत्पन्न होता है उसे आर्तध्यान कहा जाता है।

श्रुतदृष्टैः स्मृतैर्ज्ञातैः प्रत्यासत्तिं च संश्रितैः।
योऽनिष्टार्थैर्मनः क्लेशः पूर्वमार्तं तदिष्यते।।(25)

सुने हुए देखे हुए स्मरण में आये हुए और समीपता को प्राप्त हुए अनिष्ट पदार्थों के निमित्त से जो मन में क्लेश होता है वह प्रथम आर्तध्यान माना जाता है।

अशेषानिष्टसंयोगे तद्वियोगानुचिन्तनम्।
यत्स्यात्तदपि तत्त्वज्ञैः पूर्वमार्तं प्रकीर्तितम्।।(26)

समस्त अनिष्ट पदार्थों का संयोग होने पर उनके वियोग के लिए जो चिंता होती है उसे भी तत्त्वज्ञजनों ने प्रथम आर्तध्यान कहा है।

विपरीतं मनोज्ञस्य। (31)

The second monomania is its opposite i.e. इष्टवियोगज on

beings reparated from a pleasing object to repeatedly thing of reunion with it.

मनोज्ञ वस्तु के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति की सतत चिंता करना दूसरा आर्तध्यान हैं।

पूर्वकथित से विपर्यय विपरीत कहलाता है। जैसे-मनोज्ञ विषय (प्रिय वस्तु, पुत्र, कलत्र, धनादि) का वियोग हो जाने पर उसके पुनः संयोग के लिए (पुनः प्राप्ति के लिए) जो अत्यधिक चिंताधारा चलती है, मन अन्य पदार्थों में न जाकर बार-बार उसी के चिंतन में लीन रहता है, वह भी आर्तध्यान है।

मोहनीय कर्म के कारण जीव बाह्य वस्तु के इष्ट एवं मनोज्ञ का आरोप करके उसके प्रति ममत्व करता है। उस वस्तु को वह स्ववस्तु मानता है एवं उसकी सतत सुरक्षा चाहता है। उसको वह त्यागना नहीं चाहता है। उसका सामीप्य सतत चाहता है। उसके विरह से वह दुःखी होता है एवं उसको प्राप्त करने के लिए वह सतत प्रयत्न करता है। जैसे-सीता हरण के बाद क्षायिक सम्यक्दृष्टि, बलभद्र, रामचन्द्र तद्भव मोक्षगामी होते हुए भी सीता के लिए अत्यन्त दुःखी हुए, विक्षुब्ध हुए, उसका ही ध्यान करने लगे। इतना ही नहीं विरह वेदना से इतना विक्षुब्ध हो गये थे कि जिससे वे मानसिक रूप से विकलांग होकर नदी, पर्वत, पेड़, पशु, पक्षी से भी सीता के बारे में पूछताछ करते थे। इसी प्रकार इष्ट पुत्र, मित्र, भाई-बंधु के वियोग से, मरण से जीव इस इष्ट वियोगज आर्तध्यान को इतना करता है कि खाना-पीना भूल जाता है, शोक करता है, सिर फोड़ लेता है, यहाँ तक कि कभी-कभी आत्महत्या भी कर लेता है। परन्तु इस ध्यान से अज्ञानी व्यक्ति यह नहीं जानता है कि मरने के बाद जीव उस पूर्व पर्याय को धारण करके वापस नहीं आता है। वह यह भी नहीं जानता है कि जिसने पुण्य किया वह स्वर्ग आदि उत्तम गति में जाकर सुख भोग रहा है और यहाँ तक कि वह हम लोग को भूल करके भोग में मस्त हो गया होगा। यदि पाप किया होगा तो दुर्गति में जाकर कष्ट भोगता होगा उस कष्ट के कारण भी हमें भूल गया होगा-यदि भूला नहीं होगा तो भी दुःख करने से उन्हें किसी भी प्रकार का सुख नहीं पहुँच सकता है। केवल दुःख होने पर एवं आर्तध्यान करने पर पाप बंध होता है।

ज्ञानार्णव में इस ध्यान का वर्णन इस प्रकार किया है-

राज्यैश्वर्यकलत्रबान्धवसुहृत्सौभाग्यभोगात्यये।

चित्तप्रीतिकरप्रसन्नविषयप्रध्वंसभावेऽथवा।

ससंत्रासभ्रमशोकमोहविवशैर्यत्खिद्यतेऽहर्निशं।

तत्स्यादिष्टवियोगजं तनुभतां ध्यानं कलङ्कास्पदम्।।(29) (पृ.246 स.25)

जो राज्य, ऐश्वर्य, स्त्री, कुटुंब, मित्र, सौभाग्य, भोगादि के नाश होने पर, तथा चित्र को प्रीति उत्पन्न करने वाले सुन्दर इन्द्रियों के विषयों का प्रध्वंसभाव होते हुए, संत्रास, पीड़ा, भ्रम, शोक, मोह के कारण निरंतर खेदरूप होना सो जीवों के इष्ट वियोगजनित आर्तध्यान है, और यह ध्यान पाप का स्थान है।

दृष्टश्रुतानुभूतैस्तैः पदार्थैश्चित्तरञ्जकैः।

वियोगे यन्मनः खिन्नं स्यादार्त्तं तद्वितीयकम्।।(30)

देखे सुने अनुभवे मन को रंजायमान करने वाले पूर्वोक्त पदार्थों का वियोग होने से जो मन को खेद हो वह भी दूसरा आर्तध्यान है।

मनोज्ञवस्तुविध्वंसे पुनस्तत्संगमार्थिभिः।

क्लिश्यते यत्तदेतत्स्याद्वितीयार्त्तस्य लक्षणम्।।(31)

अपने मन की प्यारी वस्तु का विध्वंस होने पर उसकी प्राप्ति के लिए जो क्लेश रूप होना सो दूसरे आर्तध्यान का लक्षण है।

वेदनायाश्च। (32)

The third monomania is :

पीड़ाचिन्तवन on being affeicted by a disease or trouble to be repeatedly thinking of becoming free from it.

वेदना के होने पर उसे दूर करने के लिए सतत चिंता करना तीसरा आर्तध्यान है।

प्रकरण से दुःख वेदना का बोध होता है। यद्यपि वेदना शब्द सुख, दुःख के अनुभव करने के विषय में सामान्य है तथापि यहाँ पर आर्तध्यान का प्रकरण होने से दुःख से वेदना का अवबोध होता है। उस वेदना का प्रतिकार करने के लिए तत्पर रहने वाले के धैर्य खोकर निरंतर जो वेदना दूर करने का चिंतन है, वह भी आर्तध्यान है।

पूर्वोपार्जित असाता वेदनीय के उदय से तथा अयोग्य आहार, विहार, आचार-विचार व वातावरण से विभिन्न शारीरिक, मानसिक रोग आ घेरते है। उन रोगों के

कारण पीड़ा भी होती है। इस पीड़ा के कारण जीव बार-बार विचार करता है कैसे रोग दूर हो, मुझे कभी भी रोग नहीं हो। इसी प्रकार की चिंता से वह मानसिक रूप से और भी अधिक रोगी हो जाता है जिससे वह और भी अधिक शारीरिक और मानसिक रोगी हो जाता है। इतना ही नहीं इस आर्तध्यान से पापकर्म का बंध होता है जिससे भविष्यत् काल के लिए भी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रोग के कारणभूत बीजों का संचय करता है। अभी मनोविज्ञान में सिद्ध हो गया कि रोग के बारे में चिंता करने से रोग बढ़ता है। रोग के बारे में चिंता न करके सत् साहित्य का अध्ययन, भगवान् का गुणगान, पूजन, स्तवन, ध्यान, प्रशस्त उदात्त मनोभाव से रोग दूर होता है एवं प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। ज्ञानार्णव में इस ध्यान का वर्णन निम्न प्रकार से किया है-

कासश्वासभगन्दरोदरजराकुष्ठातिसारज्वरैः
पितश्लेष्ममरुत्प्रकोप जनितै रोगैः शरीरान्तकैः।
स्यात्सत्त्वप्रबलैः प्रतिक्षण भवैर्यद्याकुलत्वं नृणा
तद्रोगार्त्तमनिन्दितैः प्रकटितं दुर्वारदुःखाकरं।। (32) (पृ.246 स.25)

वातापित्तकफ के प्रकोप से उत्पन्न हुए शरीर को नाश करने वाले वीर्य से प्रबल और क्षण-क्षण में उत्पन्न होने वाले कास, श्वास, भगंदर, जलोदर, जरा, कोढ, अतिसार ज्वरादिक रोगों से मनुष्यों के जो व्याकुलता होती है उसे अनिंदित पुरुषों ने रोगपीड़ा चिन्तवन नामा आर्तध्यान कहा है। यह ध्यान दुर्निवार और दुःखों का आकार है, जो कि आगामी काल में पापबंध का कारण है।

स्वल्पानामपि रोगाणां माभूत्स्वप्नेऽपि संभवः।
ममेति या नृणां चिंता स्यादार्त्तं तत्तृतीयकम्।। (33)

जीवों के ऐसी चिंता हो कि मेरे किंचित् भी रोग की उत्पत्ति स्वप्न में भी न हो ऐसा चिंतवना सो तीसरा आर्तध्यान है।

निदानं च। (33)

The fourth monomania is :

निदान On being over anxious to enjoy worldly objects and not getting them in this world to repeatedly think of gaining them in future.

निदान नाम का चौथा आर्तध्यान है।

निदान अप्राप्त की प्राप्ति के लिए होता हैं, इसमें पारलौकिक विषय-सुख की गृद्धि से अनागत अर्थ-प्राप्ति के लिए सतत् चिंता चलती रहती है।

ज्ञानार्णव में कहा भी है-

भोगा भोगीन्द्रसेव्यास्त्रिभुवनजयिनी रूपसाम्राज्यलक्ष्मी
राज्यं क्षीणारिचक्रं विजितसुखधूलास्यलीलायुवत्यः
अन्यच्चानन्दभूतं कथमिह भवतीत्यादि चिन्तासुभाजां।
यत्तद्भोगार्यमुत्तं परमगुणधुर्रैर्जन्मसन्तानमूलं।।(34) (ज्ञानार्णवः पृ.247)

धरणीन्द्र के सेवने योग्य तो भोग और तीन भुवन को जीतने वाली रूप साम्राज्य की लक्ष्मी तथा क्षीण हो गये हैं शत्रुओं के समूह जिसमें ऐसा राज्य और देवांगनाओं के नृत्य की लीला को जीतने वाली स्त्री, इत्यादि और भी आनंद रूप वस्तुएँ मेरे कैसे हो, इस प्रकार के चिंतवन को परम गुणों को धारण करने वालों ने भोगार्त्त नामा चौथा आर्तध्यान कहा है और यह संसार की परिपाटी से हुआ है और संसार का मूल कारण भी है।

पुण्यानुष्ठानजातैरभिलषति पदं यज्जिनेन्द्रामराणाम्
यद्वा तैरेव वांछत्यहितकुलकुजच्छेदमत्यन्तकोपात्।
पूजासत्कारलाभप्रभृतिकमथवा याचते यद्विकल्पैः
स्यादार्त्तं तन्निदानप्रभवमिह नृणां दुःखदावोग्रधाम।। (35)

जो प्राणी पुण्याचरण के समूह से तीर्थ करके अथवा देवों के पद की वांछा करे, अथवा उन ही पुण्याचरणों से अत्यन्त कोप के कारण शत्रुसमूहरूपी वृक्षों के उच्छेदने की वांछा करे तथा उन विकल्पों से अपनी पूजा, प्रतिष्ठा, लाभादिक की यातना करे, उनको निदान जनित आर्तध्यान कहते हैं। यह ध्यान भी जीवों की दुःख रूपी अग्नि का तीव्र स्थान है।

इष्टभोगादिसिद्धयर्थं रिपुघातार्थमेव वा।
यन्निदानं मनुष्याणां स्यादार्त्तं तत्तुरीयकं।। (36)

मनुष्यों के इष्ट भोगादिक की सिद्धि के लिए तथा शत्रु के घात के लिए जो निदान हो, सो चौथा आर्तध्यान है।

समग्र क्रांति के हेतु

(बुद्धि से परे भी है क्रांति के अनेक उपाय)

(चाल : चलो दिलदार चलो.....)

चलो क्रांतिकामी (कारी) चलो...क्रांति से शांति पालो (पा-लो)!
भौतिक-बुद्धि परे...नैतिक-आत्मिक बनो...(ध्रुव)

भौतिक होता जड़, चेतना-शांति शून्य,
इसी से न मिलेंगे, सुख-शांति संपूर्ण।

जीवन जीने हेतु...भौतिक वस्तु चाहिए,
भोजन-पानी आदि...उपकरण भी चाहिए।। (1)

इसी से परे भी तो...बुद्धिलब्धि (I.Q.) चाहिए,
सीखना (व) सिखाने हेतु...बौद्धिकता चाहिए।

इसी से ही संपूर्ण...कार्य न होते पूर्ण,
कंप्यूटर आदि से यथा..महान् कार्य न सम्पन्न।। (2)

इसी से परे भी...संवेदना (E.Q.) चाहिए,
दयादान सेवा...परोपकार चाहिए।

सनम्र सत्यग्राही...उदार भाव युक्त,
सरल-सहज-सौम्य...हित व प्रियवच।। (3)

संवेदना से युक्त...कम्युनिकेशन कोशंट (C.Q.),
ज्ञानार्जन (व) शिक्षा हेतु...परस्परउपग्रहो युक्त।

धैर्य (P.Q.) व सहिष्णुता युक्त...करेज कोशंट (C.Q.) युक्त,
सांस्कृतिक आध्यात्मिक...उपलब्धियाँ (S.Q.) युक्त।। (4)

उक्त गुणों से सहित...ध्यान-अध्ययन युक्त,
क्षमादि दश धर्म सहित...प्रमोद माध्यस्थ युक्त।

आत्मविशुद्धि सहित...होती है सही क्रांति,
आत्म उपलब्धि हेतु...'कनकनन्दी' चाहे क्रांति।। (5)

सीपुर, दिनांक 13.10.2016, मध्याह्न 2.56

संदर्भ-

आईक्यू के साथ कितने क्यू?

पूरे व्यक्तित्व को बुद्धि के साथ कई अन्य बातें भी प्रभावित करती हैं। इन्हें भी जानना जरूरी है...(डॉ. श्रीकान्त रेड्डी, मनोविशेषज्ञ)

लोग जीवन में सफलता का पैमाना व्यक्ति के आई क्यू (इंटेलीजेंस कोशंट) यानी बौद्धिक क्षमता को मानते हैं। यह कुछ हद तक सही भी है क्योंकि शिक्षा से संबंधित मामलों में इसकी उपयोगिता है। परंतु इसके साथ ही कई अन्य क्षमताओं (अन्य कोशंट का अच्छा स्कोर) का होना भी उतना ही आवश्यक है, जो विभिन्न सामाजिक व निजी मामलों में अहम भूमिका निभाती हैं। इनमें से कुछ वैज्ञानिक आधारों पर परखी जा चुकी हैं, तो कुछ पर इस दिशा में कार्य हो रहा है। चूँकि बौद्धिक क्षमता से बहुत अधिक प्रभावित कर पाना आसान नहीं, ऐसे में जीवन के अनुभवों से सीखकर अन्य क्षमताओं को बढ़ाया जा सकता है।

इमोशनल कोशंट (ई.क्यू.)-यह दूसरों की भावनाएँ समझने की क्षमता दर्शाता है। अक्सर देखा गया है कि अच्छे आईक्यू के बावजूद, यदि व्यक्ति दूसरों की भावनाएँ व व्यवहार नहीं समझ पाता और अपने व्यवहार में बदलाव नहीं कर पाता तो जीवन के कई अहम पड़ावों पर असफल होता है। यह वैज्ञानिक आधारों पर भी परखा जा चुका है। हालाँकि ध्यान देकर व अन्य लोगों के प्रति संवेदनशील बनकर इसे बेहतर किया जा सकता है।

कम्युनिकेशन कोशंट (कॉम.क्यू.)-इसके तहत बोलचाल व शारीरिक भाषा आती है। कई बार लोगों को लगता है कि कम बोलने वाले इसमें कमजोर होंगे और वाचाल मजबूत। हालाँकि कम बोलने वाले भी अपनी बात ठीक तरह से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचा पाने व मनवाने की क्षमता रखते हैं, तो उनका कॉम.क्यू. अच्छा होता है। दूसरी ओर वाचाल प्रवृत्ति के चलते काम बिगाड़ लेने और लोगों से बुराई ले लेने की स्थिति में यह उलटा हो जाता है। इसलिए शारीरिक व शाब्दिक भाषा पर नियंत्रण व उसका उचित उपयोग इसे बेहतर बनाता है।

करेज कोशंट (सी.क्यू.)-यह व्यक्तिगत रूप से साहस दिखाने, कड़े कदम उठा पाने, आगे बढ़कर पहल करने, बतौर नेता अगुआई करने जैसी क्षमताओं को दर्शाता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता के लिए इसकी अहम भूमिका है। कई

बार यह जन्मजात होता है, तो कई बार लगातार विभिन्न साहसिक, रचनात्मक, सांस्कृतिक गतिविधियों में हिस्सा लेने से विकसित हो जाता है।

अन्य कोशंट–पेशेंस कोशंट (पीक्यू) धैर्य रखने की क्षमता से संबंधित और फाइनेंशियल कोशंट (एफक्यू) आर्थिक प्रबंधन व इससे जुड़े निर्णय लेने की क्षमता को दर्शाता है। सारी क्षमताओं का स्तर हर व्यक्ति में अलग-अलग होना ही उनकी पहचान बताता है, लेकिन आई.क्यू. व ई.क्यू. का अच्छा होना आवश्यक है।

अविरल-अनंत-महासंग्राम

(व्यापार-राजनीति से धर्म तक में महासंग्राम)

(चाल : छोटी-छोटी गैय्या....., सायोनारा.....)

महासंग्राम...महासंग्राम, अविरल-अनंत महासंग्राम।
संसारी जीवों के महासंग्राम, कर्म के दासों के महासंग्राम।।

राग द्वेष मोह काम क्रोध के, दास जीव करते हैं महासंग्राम।
ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व हेतु, आहार-भय-मैथुन-परिग्रह हेतु।।

अनादि काल से प्रत्येक जीव, सूक्ष्म से लेकर मानव तक।
स्व-स्व परिणाम व अवस्था युक्त, करते संग्राम मोह-आसक्त।।

अनादि कालीन इन संस्कार युक्त, करते संग्राम मनुष्य तक।
व्यापार, राजनीति से (लेकर) धर्म पर्यंत करते संग्राम मोह आसक्त।।

धार्मिक पंथ-मत जाति निमित्त, धन-जन व नाम निमित्त।
राष्ट्रभाषा-लिंग-काला-गोरा हेतु, मनुष्य लड़ते वर्चस्व हेतु।।

इसलिए मोहासक्त मनुष्य तक, धर्म से भी न पाते सुख तक।
ईर्ष्या तृष्णा घृणादि से हो आसक्त, जो धर्म करते वर्चस्व निमित्त।।

अनंत बार तक जीव बनकर, मानव जो उक्त प्रकार करते धर्म।
उन्हें भी न मिलता है अनंत सुख, यथा अधर्मी को न मिले सुख।।

धर्म तो समता-शांति-पावन युक्त, उदार-सहिष्णु, वर्चस्व रिक्त।
सरल-सहज विनम्रता युक्त, उत्तम क्षमादि दश धर्म युक्त।।

सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि रिक्त, राग द्वेष मोह काम क्रोध रहित।

ईर्ष्या-तृष्णा-घृणादि से रहित, आत्म-विश्वास ज्ञान चारित्र युक्त।।

ज्ञान-ध्यान-तप-त्याग सहित, दान-दया-सेवा सहित।
होता है धर्म आत्म शुद्धि सहित, आकर्षण-विकर्षण से रिक्त।।

इसी से कर्मबंध हेाता विमुक्त, जीव होता शुद्ध-बुद्ध-आनंद।
यह ही जीव का यथार्थ धर्म, अन्य सभी संसार हेतु संग्राम।।

अज्ञानी मोही से अज्ञात ये धर्म, धर्म के नाम पर करते अधर्म।
अज्ञान मोह नाश हेतु करणीय धर्म, 'कनक' सेवते आत्मिक धर्म।।

सीपुर, दिनांक 05.11.2016, मध्याह्न 2.48

(विभिन्न धार्मिक पंथ-मत में हो रहे संग्राम से द्रवित होकर यह कविता बनी।)

सीपुर वासिनी-जिनवाणी-सरस्वती की स्तुति

(मूर्तिक प्रतीक में अमूर्तिक स्वरूप)

(चाल : बंगला-उड़िया....., हाँ तुम बिल्कुल.....)

जननी! जननी! जननीऽऽऽ वंदे श्री जिनवाणीऽऽऽ
कमलासना हँसवाहिनीऽऽऽ सीपुर समता क्षेत्र वासिनीऽऽऽ...(ध्रुव)...

पुस्तक धारिणी वीणावादिनी...जपमाला से आप शोभिनी...
माला मुकुट कुण्डल धारिणी...नुपूर श्वेत वस्त्र धारिणी...(1)...

स्मित वदना चारु हास्यमयी...दिव्यलोचना सुज्ञानमयी...
प्रतीक रूपे आप मूर्तमयी...अमूर्त रूपे विज्ञानमयी...(2)...

सर्वज्ञ सुता आप जिनवाणी...भव्य जीवों की ज्ञानदायिनी...
निर्लिप्तमय कमलासन...हँस प्रतीकमय भेद-विज्ञान...(3)...

श्रुतज्ञानमय पुस्तक रूप...अनेकांतमय वीणा रूप...
ज्ञानध्यानमयी जपमाला...सर्वश्रेष्ठमय मुकुट तव/(भाल)...(4)...

बुद्धि ऋद्धिमय कुण्डल तेरा...स्याद्वाद ध्वनिमय नुपूर तेरा...
सत्य समतामय श्वेत वसन...ज्ञानानंदमय स्मित वदन...(5)...

निष्कलंकमय चारु हास्य तव...केवलज्ञानमय दिव्य लोचन...

मूर्तिक रूप में अमूर्तिकमयी...तव उपासक 'कनक' सूरी...(6)...

सीपुर, दिनांक 31.10.2016, मध्याह्न 2.53

ऐतिहासिक आदर्श एक दिवसीय पञ्चकल्याणक व जैनेश्वरी दीक्षा सम्पन्न

प्रगतिशील समता तीर्थ धाम, अतिशय क्षेत्र सीपुर के देव-शास्त्र-गुरु जिनालय में अत्यंत भव्य आदर्श पञ्चकल्याणक व द्वय जैनेश्वरी दीक्षा समारोह प.पू. वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ व आपके पोता शिष्य आचार्यश्री वैराग्यनंदी जी गुरुदेव ससंघ सान्निध्य में प्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ। देवाधिदेव भ. श्रेयांसनाथ की अद्वितीय अद्भुत प्रतिमा के दर्शन वंदन से देश-विदेश के भक्त अत्यंत आह्लादित हुए। यह ऐतिहासिक समारोह आगमोक्त, अनुशासित, समयानुबद्ध, नवाचारी, महान् संभावनाकारी, बहुआयामी उपलब्धिकारी व प्रेरणादायी बना। ग्राम सेमारी की दीक्षार्थी भूरीबाई क्षुल्लिका शांतिश्री व सागवाड़ा कॉलोनी की अजब बा शाह क्षुल्लिका श्रेयांसश्री बनी। आचार्यश्री संघ व उपस्थित दर्शनार्थियों ने भावपूर्ण अनुमोदना की। गुरुदेव ने दीक्षा के रहस्य पर संस्कार करते हुए ही प्रकाश डाला, जिससे उपस्थित जनों को शिक्षा व प्रेरणा प्राप्त हुई।

दीक्षा के अनंतर षट्खण्डागम (कषाय पाहुड़) व आचार्यश्री कुंथुसागर जी गुरुदेव सृजित कृति ''दि. जैन धर्म में तेरह पंथ समीक्षा'' आचार्यश्री गुप्तिनंदी जी सृजित ''श्री तीस चौबीसी विधान'' व आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव सृजित गद्य-पद्यात्मक कृतियों ग्रंथांक 261 व 262 का भी विमोचन हुआ। इस अवसर पर गुरुदेव के दि. व श्वेताम्बर भक्त शिष्यों द्वारा आचार्यश्री संघ के आगामी 2021 तक चातुर्मासों हेतु निवेदन प्रस्तुत किये गये। आचार्यश्री वैराग्यनंदी जी गुरुदेव ससंघ को आध्यात्मिक रहस्यों का अध्यापन श्री गुरुदेव द्वारा कराया गया, जिससे सर्व साधु-साध्वियाँ अत्यंत प्रभावित व आनंदित हुए एवं उन्हें स्वरचित विविध साहित्य प्रदान कर आशीर्वाद दिया। सीपुर समता तीर्थधाम के प्रगतिशील उदारमना देवशास्त्र गुरु भक्त श्री नितिन जैन को अखिल भारतीय जैन एकता मञ्च संस्थान, नई दिल्ली की ओर से ''कर्मठ समाज रत्न'' उपाधि से सम्मानित करते हुए प्रशस्ति/अनुमोदना प्रदान

की गई व आचार्य श्रीसंघ ने भी नितिन जैन की महान् भावना व कार्य योजना की सफलता हेतु शुभ मंगल आशीर्वाद प्रदान किया। आगंतुक दानवीरों ने भी क्षेत्र के विकास हेतु उदार भाव से दान देकर पुण्य लाभ प्राप्त किया।

शुभ भावनाओं सह-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

स्वाध्याय तपस्वी आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव पूजन

-बा.ब्र. पल्लवी

(चाल : प्रभु की पूजा करना है.....)

निस्पृही गुरु की जय, आध्यात्मिक गुरु की जय।
सिद्धांत चक्री की जय, श्री आचार्य रत्न की जय।।
आह्वान करते हैं, स्थापनम् करते है।
पूजन वंदन गुरु का करके पुण्य कमाते हैं।।

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव अत्र अवतर-अवतर संवौषट् अह्राननं।

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

जल- शुद्ध शुचि निर्मल नीर कलशा भर ले आया।
जन्म जरा मृत्यु नाशने गुरु चरणे में आया।।
निस्पृह गुरु की जय, आध्यात्मिक गुरु की जय।
सिद्धांत चक्री की जय, आचार्य रत्न की जय।।

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।

चंदन- कर्पूर मिश्रित चंदन केशर, भाव भक्ति से लाया।
भव-भव के ताप मिटाने को, सूरिवर पद में आया।। निस्पृह...

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।

पुष्प- चंपा चमेली मोगरा, गुलाब केतकी लाया।
ब्रह्म भाव हो विकसित (हेतु) ऋषिवर चरणे (में) आया।। निस्पृह...

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।

नैवेद्य- नाना मनमोहक व्यंजन, थाली भर ले आया।
क्षुधा रोग नाश करने का, भाव ले मैं आया।। निस्पृह...

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

दीप- दीपक रत्न माणिक्य का, घृत भरके ले आया।
अज्ञान तिमिर खो जाए, गुरुवर के चरणे आया।। निस्पृह...

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो मोहन्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।

धूप- शुद्ध धूप दशांग ले, मुनिवर चरणे में आया।
कर्मों का धूम उड़ाऊँ, सूरिवर चरणे आया।। निस्पृह...

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।

फल- उत्तम रस पूरित फल का, थाल सजाके लाया।
महा-मोक्ष फल की चाहत से, गुरु चरणे में आया।। निस्पृह...

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो महा मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।।

अर्घ्य- अष्ट द्रव्य का थाल सजाकर, भक्ति भाव से मैं आया।
गुण अनंत को पाने, गुरुवर चरणे में आया।। निस्पृह...

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

शांतिधारा-क्षीर सागर के जल ले, गुरुवर चरणे में आया।
आत्म शांति करने हेतु, आपके शरण में आया।। निस्पृह...

पुष्पांजली-थाली भर-भर के पुष्पों के लेकर आज मैं आया।
गुरुवर के चरणे, पुष्पवृष्टि करने आया।।

जाप- ॐ ह्रूँ आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुवे नमः।

जयमाला

(चाल : लेते रहेंगे तेरा नाम.....)

निस्पृह गुरु की भक्ति करो हे! भव्य जीवों।
गुरु पूजन करो हे भव्य जीवों।
भक्ति से ही मुक्ति मिलेगी, मुक्ति में ही अनंत सुख है।। निस्पृह...
कनकनन्दी गुरुवर महाज्ञानी, कलिकाल के अकलंक स्वामी।
सरस्वती पुत्र की महिमा भारी, कलिकाल के समंतभद्र सूरी।
पूजन करलो, गुरुगुण गाओ।
गुरुवर की भक्ति से भव पार करलो।। निस्पृह...
ख्याति, पूजा, लाभ त्यागी का संयम जीवन धन्य है।
निराडम्बर, निस्पृह संत की, आत्म साधना ही श्रेष्ठ है।
अर्चन करलो, गुरुगुण गाओ।
गुरु पूजा करके बहु पुण्य कमालो।। निस्पृह...
वैज्ञानिक आचार्य के गुणगण अगाध, अनुशासन प्रेमी की शासन निगूढ
देश-विदेशों के भक्त आते गुरु चरणों में, ध्यान-अध्ययन मैं को पाने को
पूजन करलो, गुरु भक्ति करलो
गुरु आराधना, करके स्व (आत्मा, मैं) को पाओ।। निस्पृह...

गुरुवर्य आचार्य कनकनन्दी संबंधी- मेरे चार दिवसीय अनुभव

-मुनिश्री श्रमणनंदी

प.पू. वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के चरणों में शत-शत वंदन...

गुरुदेव के दर्शन पाकर ऐसा लगा जैसे प्रत्यक्ष में भगवान् महावीर स्वामी का समवशरण लगा हो और उसमें भगवान् महावीर स्वामी का उपदेश सुनकर हमें आत्मा में जैसा आह्लाद होता है, वैसे ही आपके उपदेश सुनकर हुआ है, अतः आज के महावीर तो आप ही है।

गुरुवर, आपका नाम व गुण मैंने हर संघ में हर श्रावक से सुना है कि आज हमारे बीच में ज्ञान प्रदान करने वाले कोई गुरु हैं तो मात्र आचार्य कनकनन्दी ही हैं। यह चर्चा तो अनेक वर्षों से चली आ रही है, किन्तु वर्तमान में आपके ज्ञान की चर्चा देश से आगे बढ़कर विदेश तक भी हो गई है। सबसे बड़ा अनुभव यह सुनने व देखने को मिला कि हमने आपसे कोई भी प्रश्न पूछा तो आपने उस विषय का उत्तर व समाधान बिना किसी पुस्तक का अवलंबन लिए व बिना देखे विस्तार से समझाया।

आपके द्वारा बिना ग्रंथ देखे लगातार दो घंटे से लेकर पूरे दिन किसी भी विषय पर बोलना, पढ़ाना जो हमने आज तक कहीं भी, किसी से नहीं सुना न पढ़ा, ऐसा सूक्ष्म व गहन विषय आपसे पढ़ने व सुनने को मिला है। अतिशय क्षेत्र सीपुर में आपने दीक्षा संबंध में जैसा गहन रूप से समझाए वैसा हमने आज तक कहीं भी, कभी भी नहीं सुना।

गुरुवर! आपने शरीर के उपचार व स्वास्थ्य के बारे में हम सबको जो बिना खर्च की दवा बताई व विशेष रूप से व्यायाम, प्राणायाम, योगासन के प्रायोगिकीकरण को देखकर बहुत प्रसन्नता का अनुभव होता है। आपकी चर्या, चिंतन-मनन निरंतर अंतरंग शुद्धि के लिए होता है, बाहर की क्रिया में नहीं। आपसे दुनिया का कोई भी व्यक्ति किसी भी विषय में प्रश्न करे तो आप उसका उत्तर विस्तार से सटीक रूप से देते हैं। हे गुरुदेव! हम आपका गुणगान जीवन भर भी करे तो भी पूर्ण नहीं हो सकता है।

सूरज से तुलना कैसे करे, वो साँझ ढले छिप जाता है।
चन्दा की उपमा कैसे दे, वो भोर भए खो जाता है।।
पर आचार्य कनकनन्दी गुरु का क्या कहना, इनका तेज निराला है।
सूरज चन्दा तो छिप जाते हैं, पर आप सदा चमकने वाले हैं।।

गुरुदेव! हम तो अज्ञानी हैं, मेरे द्वारा लिखने में गलती हो तो क्षमा करना एवं आपका आशीर्वाद सदा के लिए मिलता रहे, यही शुभ भावना आपसे करते हैं।

आपका शिष्य-मुनिश्री श्रमणनंदी

सीपुर, दिनांक 05.11.2016

मेरा अनुभव आचार्य कनकनन्दी संबंधी

(कु. खुशी जैन)

गुरुवर आप इतने ज्ञानी है कि आप जैसे गुरुवर हमारी कॉलोनी में आये और कॉलोनी का उद्धार हो गया। हम बच्चे, बड़े, बुजुर्ग, बड़े-बड़े वैज्ञानिक इतने सौभाग्यशाली है कि हमें आपका ज्ञान प्राप्त हुआ। हमें कुछ भी नहीं आता था हम सोचते थे कि हमें हिन्दी, अंगेजी दोनों आती थी। लेकिन तब हमें पता नहीं था कि हम गलत थे लेकिन जिस दिन आपका कॉलोनी में प्रवेश हुआ तब से हमें जितना ज्ञान स्कूल में प्राप्त नहीं हुआ उतना ज्ञान हमें छः महीने में आपसे प्राप्त हुआ। आपका ज्ञान इतना गहन है कि बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी समझ नहीं पाते जब साधु-संत व बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी नहीं समझ पाते हैं तो हम क्या समझेंगे। आप स्वयं को एक छोटा बालक समझते हो और हम छोटे बालक होते हुए भी हम स्वयं को दूसरों से ऊँचा मानते है। हम ये समझते थे कि हमें सब कुछ आता है लेकिन हमें कुछ भी नहीं आता है। आपके सान्निध्य में रहकर हमें अच्छी कविताएँ बोलने का अवसर मिला। पहले हमें कविताएँ बोलने भी नहीं आती थी। अब तो उस कविता का मैं अनुवाद भी कर लेती हूँ।

सुविज्ञसागर जी गुरुदेव ने हमको बहुत अच्छे भजन सिखाये और अब वह भजन कोई भी खड़ा करके पूछ ले तो हम तुरंत भजन बोलने के लिए तैयार हो जाते हैं। आध्यात्मनंदी जी गुरुदेव ने हमें सरल व शांत स्वभाव से रहना सिखाया।

सुवत्सलमती माताजी ने हमें अच्छे नाटक, नृत्य सिखाये। सुवीक्षमती माताजी ने हमको बहुत अच्छा ज्ञान व प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार सभी गुरुदेव और माताजी ने बहुत अच्छा ज्ञान दिया और उनके बताये मार्ग पर चलकर हमारा जीवन खुशियों से भर गया है। गुरुदेव! आपका संघ बहुत निराला है व जो काम बड़े नेता से नहीं होता वह काम भी आप करके दिखा देते हैं। आपके सामने वैज्ञानिक भी फेल है। आपका स्वाध्याय चिन्तन व अनुभव ज्ञान से युक्त होता हैं। आपके स्वाध्याय में भी हमें बहुत लाभ हुआ। गुरुवर! आपने हमें 'मैं' का ज्ञान दिया। हम 'मैं' का अर्थ मेरा है तेरा है ऐसा ही समझते थे परन्तु आपने 'मैं' का अर्थ 'आत्मा' बताया। आपका

परम लक्ष्य आत्मा को पाना है। आप कहते हैं कि जब तक मैं आत्मा को पा नहीं लेता तब तक सर्वज्ञ नहीं बन सकता। लेकिन हम तो आपको बहुज्ञ गुरु मानते हैं। आपने हमें कविता बनाना सिखाया। आप इतने संयमधारी व समय के पाबंद हो कि यह काम इस समय करना है तो उसी समय पर करते हैं। गुरुदेव! मैंने 6 महीने में आपसे अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त किया है जो अभी व भविष्य में प्रेरणा देगा। मैंने आपसे यह भी सीखा कि काम कितना भी बड़ा हो, उससे डरना नहीं चाहिए व करने से मना भी नहीं करना चाहिए। मुझे स्कूल में टीचर जो काम देते हैं मैं कभी मना नहीं करती हूँ। लोग समझते है कि औरते गुरु की सेवा नहीं कर सकती परन्तु औरतें आहारदान देकर सेवा करती है।

गुरुदेव! आपने ग.पु. कॉलोनी में ज्ञान रूपी प्रकाश फैलाया। वह ज्ञान प्रकाश (ज्योति) पुनः हमारे कॉलोनी में आये ऐसा चाहती हूँ। आपका 2018 का चातुर्मास होगा परन्तु मैं चाहती हूँ कि 2017 का भी चातुर्मास यहीं हो। जिस प्रकार नितिन भैया आपकी सेवा करते हैं उसी प्रकार हम भी आपकी सेवा में तत्पर खड़े हैं।

गुरुदेव! मैं 14 वर्ष की हो गई हूँ परन्तु कभी भी जन्म दिन नहीं मनाया क्योंकि मुझे पता है मेरे जीवन का एक वर्ष कम हुआ है। लोग जन्म दिन मनाकर खुश होते हैं। आपकी ज्ञान ज्योति पुनः कॉलोनी में जगमगाये यह मेरी मेरे परिवार की व कॉलोनीवासियों की सद्भावना हैं।

नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु।
कनकनन्दी गुरुदेव की जय।।

कु. खुशी जैन पुत्री श्री राजेश कुमार जैन, ग.पु.कॉ., सागवाड़ा